Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

S. 2004

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

NAGRI
Pracharini
Patrika

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110730

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2004
57
1947

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक)

110730

वर्ष ५२—अंक ३ [नवीन संस्करण] सं० २००४

कार्त्तिक-पौष

विषय-सूची

मालवा का प्रद्योत राजवंश—श्री सूर्यनारायण व्यास ८६
अपभ्रंश भाषा के कतिपय अन्य दिगंबर जैन ग्रंथ—श्री अगरचंद नाहटा १०२
'आलम' की कृतियाँ—श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र १०६
समीक्षा ११७
सूचनिका १२६
संपादकीय १२७

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पत्रिका' के उद्देश्य

१—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।

२—हिंदी-साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।

३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।

४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

सहायक

शिवनाथ

विशेष सूचनाएँ

(१)

'सभा' की प्रबंध-समिति ने ७ ज्येष्ठ, सं० २००४ के अधिवेशन में निश्चय किया है कि जिन परिवारों में एक से अधिक व्यक्ति 'सभा' के सभासद हों उनमें से एक को छोड़कर शेष व्यक्तियों को चंदे के अतिरिक्त १) और देनेपर 'सभा' द्वारा प्रकाशित ५) अंकित मूल्य की पुस्तकें 'पत्रिका' की जगह मिल सकेंगी।

(२)

साधारण सभा के शनिवार, १० श्रावण, सं० २००४ के अधिवेशन में यह निश्चय हुआ कि 'सभा' की साधारण सदस्यता का चंदा अगले साल से ३) से ५) कर दिया जाय।

मूल्य प्रति अंक २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे और भी कुछ अवांतर या प्रासंगिक कथाओं का संविधान किया गया है। मंगलाचरण के अनंतर उसमें इंद्र की सभा का वर्णन है, जिसमें जयंती नाम की अप्सरा उर्वशी की भाँति अभिशप्त होती है, वह शिला होकर वन में पड़ी रहती है। माधव अपने गुरु के लिये सामग्री लेने जाता है और शिला को देखता है। उसके द्वारा शिला का उद्धार होता है। माधव उसके साथ इंद्र की सभा देखने की इच्छा करता है। जयंती उसके गुण पर रीझती है, वह पृथ्वी पर कामकंदला के रूप में अवतरित होती है। पुष्पावती नगरी के नरेश गोविंद्रचंद्र के यहाँ से माधव निर्वासित किया जाता है और कामावती नगरी में आता है, वहाँ राजा की दी हुई भेंट वह कामकंदला के नृत्य-कौशल पर रीझकर दे देता है। राजा उसकी धृष्टता पर खीझकर देसनिकाले की घोषणा करता है। विक्रम से सहायता प्राप्त कर वह कामावती पर उसे चढ़ा लाता है। कामकंदला और माधवानल की मृत्यु होती है, और वैताल अमृत लाकर उन्हें जिलाता है। युद्ध होने पर कामसेन पराजित होता है और कामकंदला को दे देता है, जिसे पाकर माधव घर लौटता है।

श्री बालकृष्णदास की हस्तलिखित प्रति आरंभ में खंडित है, पर अंत में बहुत सा अंश 'सभा'-वाली छोटी प्रति से उसमें अधिक अवश्य संनिविष्ट है, जिसमें माधव के पिता शंकरदास का वर्णन आदि आ गया है। विक्रम माधव के अनुरोध करने पर उसके साथ पुष्पावती की ओर गया। राजा ने विक्रम का आगमन सुना, तो अपने पुरोहित शंकरदास को दूत बनाकर उसके पास भेजा। वह विक्रम के पास पहुँचकर उसे भेंट आदि देकर आने का कारण पूछने लगा। विक्रम ने भी शंकरदास की उदासी का निमित्त जानने की जिज्ञासा की। वह रो पड़ा और कहने लगा कि मेरा पुत्र पुष्पावती से निर्वासित होकर कामावती नगरी की ओर गया, तब से उसका पता नहीं चलता। विक्रम ने माधव को उसके सामने किया। पिता परम प्रसन्न हुआ। माधव ने निर्वासित होने के पश्चात् की सारी गाथा पिता के समक्ष निवेदित की। विक्रम ने कहा कि मैं तो केवल माधव को सौंपने के लिये आया था, मेरा कोई अन्य प्रयोजन नहीं। पुरोहित ने लौटकर गोविंद्रचंद्र से पूरी कथा कही। राजा ने आकर सत्कारपूर्वक माधव को नगर में बुलाया।

श्यामसनेही

इसमें रुक्मिणी-विवाह की प्रसिद्ध कथा दोहे, चौपाइयों में कही गई है। इसमें वर्णनों का विस्तार किया गया है। शिशुपाल के साथ स्थिर हुए रुक्मिणी के विवाह में किस प्रकार श्री कृष्ण ने रुक्मिणी के पत्र पर जाकर उसका हरण किया, इतनी ही तो कथा है, अतः उसका विस्तार वर्णनों से ही हो सकता था। प्रबंधकाव्य के घटनात्मक, भावात्मक, विचारात्मक और वर्णनात्मक अवयवों में से किस प्रकार वर्णनात्मक अवयव की प्रधानता हिंदी में बहुत दिनों से चली आ रही है, इसका प्रमाण 'श्यामसनेही' भी है। केशवदास जी ने जिस प्रकार 'रामचंद्र चंद्रिका' में विवाह के प्रसंग में गाली भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गवाई है उसी प्रकार रुक्मिणी के विवाह में 'आलम' ने भी। तुलसीदास जी ने 'गारि गावहिं' कहकर बात टाल दी है। पर 'आलम' ने उसको टाला नहीं। यह प्रेम और भक्ति दोनों की रचना है। इसे कवि ने स्पष्ट कहा है—

प्रेम रु भक्ति ताहि मन भावैं। करैं कंठ जग सोभा पावैं।

इसके नामकरण का कारण भी दिया है—

प्रीति सब अंग सुंदर देही। नाम धर्‍यौ तिहि 'स्याम-सनेही'।

निर्माण का कारण यह है—

आलम जीवहु जो पलक, इहि चंचल संसारु।
दे अहार पोषहु मनहिं, प्रेम भक्ति आधारु॥

भाषा इसकी अवधी, व्रज दोनों की खिचड़ी है।

सुदामाचरित

इसमें सुदामा की प्रसिद्ध कथा ली गई है। दरिद्र सुदामा अपने गाँव में दीन-हीन अवस्था में निवास करते हैं। उनकी स्त्री ने जब सुना कि मेरे पति के मित्र द्वारकाधीश हैं तो वह उन्हें द्वारका जाने के लिये प्रेरित करने लगी। अपनी दरिद्रता और श्रीकृष्ण के वैभव का वैषम्य सामने कर वे द्वारका जाने में आगा-पीछा करने लगे। ब्राह्मणी ने जब बात-चीत में उनके न जाने का व्याज उपायन का अभाव सुना तो वह पड़ोसिन से चावल माँग लाई, जिसे लेकर सुदामा द्वारका चले। वहाँ श्रीकृष्ण ने उनका आतिथ्य-सत्कार किया, उनकी चावलों की पोटली छीनकर प्रेमपूर्वक उससे दो मुट्ठी चावल चबाए। सुदामा लौटने लगे, तो उन्हें कुछ नहीं दिया। उधर श्रीकृष्ण ने विश्वकर्मा को भेजकर उनकी झोपड़ी को राजप्रासाद में परिवर्तित कर दिया। सुदामा अपने घर पहुँचे, तो उन्हें झोपड़ी के स्थान पर राजप्रासाद मिला। सारा रहस्य खुला, तो वे श्रीकृष्ण की उदारता पर चकित रह गए।

'सुदामाचरित' में प्रायः इतनी ही कथा का ग्रहण हिंदी के अनेक कवियों ने किया है। बीच बीच में कुछ प्रसंगों का वर्णन करने में भले ही विस्तार कर दिया हो, घटना-चक्र प्रायः इतना ही लिया गया है। नरोत्तमदास जी का 'सुदामाचरित' बहुत ही प्रसिद्ध और सरस भी है। संवादों का विधान उसमें रमणीय है और नाटकीय ढर्रे का है। 'आलम' का 'सुदामाचरित' नरोत्तमदास जी की रचना से बहुत मिलता जुलता है। नरोत्तमदास जी का रचना-काल सं० १६०२ के आसपास माना जाता है। वे बाड़ी ग्राम (सीतापुरा) के बतलाए जाते हैं। हो सकता है 'आलम' के सामने उनकी पोथी रही हो। ऐसा मानने में कोई बाधा नहीं है। कृष्ण-भक्ति का जो प्रवाह वल्लभाचार्य और चैतन्यदेव की प्रस्थापनाओं के परिणाम-स्वरूप प्रवाहित हुआ उसमें भक्त कवियों ने तो योग दिया ही, शुद्ध काव्य की प्रेरणा से भी उसकी ओर लोग प्रवृत्त हुए। भक्त कवियों ने तो वृंदावन को लीला-भूमि बनानेवाला श्रीकृष्ण का बाल और यौवन जीवन चुना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उनके जीवन के अन्य रसात्मक खंड भी आकर्षक प्रतीत हुए, जिनमें से सुदामा का दारिद्र्य-मोचन भी उनके प्रेम-भाव के उदात्त रूप का निदर्शक था। ऐसा प्रतीत होता है कि भक्त कवियों ने तो पदों में अपनी संगीत-धारा प्रवाहित की, पर काव्य की ओर रमे रहनेवालों ने हिंदी के कवित्त-सवैया छंदों में उनके जीवन के इन्हीं रसात्मक खंडों को या उनके द्वारा व्यक्त अन्य रसात्मक खंडों को भी ग्रहण किया। नरोत्तमदास जी के 'सुदामाचरित' का विशेष प्रसार हुआ। काव्य-भाषा व्रज में तो उसका बंध बाँधा ही गया था। लोक-भाषा के रूप में रेखता या खड़ीबोली फैल चुकी थी, बोलचाल की भाषा में उसे लाने की आवश्यकता समझकर ही 'आलम' ने उसे 'रेखता-बंद' कर दिया। निश्चय ही नरोत्तमदास जी का ग्रंथ पहले पूरवी देशों में फैला होगा। 'आलम' की व्रजभाषा अवधी या पूरवी प्रयोगों से लदी हुई है। इसलिये यदि यह माना जाय कि वे पूरब के ही निवासी थे तो 'सुदामाचरित' का 'रेखता-बंद' होना यह बतलाता है कि यह भाषा लोक-भाषा के रूप में छाने लगी थी या पूरब में छा गई थी। अथवा यह मानना पड़ेगा कि वे पहले पूरब में रहते थे, बाद में कहीं पछाँह में जा बसे। वहाँ उन्होंने इसे 'रेखता-बंद किया। सुना जाता है कि 'आलम' जौनपुर जिले के रहनेवाले थे, पर अभी तक जो सामग्री मिली है उसके आधार पर 'आलम' के निवास-स्थान का पक्का निश्चय नहीं हो सकता। यहाँ स्थान का निर्णय विषयांतर भी है।

• आलमकेलि

इसके वर्ण्य विषय इस प्रकार हैं—श्रीकृष्ण की बाललीला, नवोढ़ा, प्रौढ़ा, अभिसार, मानिनी, संकेतस्थल, नायक की दूती, विरह-वर्णन, सखी की उक्ति सखी प्रति, खंडिता, प्रेमकथन, वंशी, प्रवत्स्यत्पतिका, भँवरगीत, उद्धव का लौटना, जसोदा-विरह, गोपी-विरह, पवन-वर्णन, यमुना-कुंज, गंगा-वर्णन, दीनता, शिव के कवित्त, देवी के कवित्त, रामलीला, रेखता, सवैया (प्रेम-वर्णन), विपरीति, यशोदा की उक्ति, नवयौवना, मानवर्णन, चंद्रकलंक, कुचछवि, युगलमूर्ति, अभिसार, आगतपतिका और शांतरस। इस तालिका से स्पष्ट है कि 'आलमकेलि' में 'आलम' और 'शेख' की ये स्फुट रचनाएँ क्रमबद्ध की गईं और शीर्षकों में बाँटी गई हैं। प्रश्न होता है कि स्वयं कवि ने ऐसा किया या किसी दूसरे ने। संग्रह दूसरों के द्वारा ही हुआ है; क्योंकि 'आलम' की रचना पर चाहे जिस प्रकार से विचार किया जाय वे स्वच्छंद वृत्ति के प्रेमी कवि ही प्रतीत होते हैं। उनकी रचनाओं में रीतिबद्ध कृतियाँ अवश्य हैं, पर सारी रचनाएँ रीति के साँचे में ढली नहीं है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में किसी रीति-प्रेमी व्यक्ति ने, चाहे वह उनका अनुगामी ही रहा हो, इन्हें विभाजित किया। शृंगार की कविता का विभाजन करने के लिये नायक-नायिका के अवांतर भेद विशेष अनुकूल और सुख-साध्य थे। इसी से उनकी रचना इस प्रकार विभाजित की गई। शृंगार-काल के कवियों की प्रवृत्ति यह जान पड़ती है कि वे पहले रीतिबद्ध रचना में संलग्न हुए, पर उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंधनों में इन उन्मुक्त कवियों की वाणी बँधकर नहीं चल सकती थी, इसलिये ये रीति के बंधन से मुक्त होकर स्वच्छंद मार्ग पर चलने लगे। श्रीकृष्ण का स्वच्छंद प्रेम, जो भक्ति-भूमि पर खड़ा हो गया था, इनकी प्रवृत्ति के अनुकूल और आधार रूप मिल गया। फल यह हुआ कि ये स्वच्छंद गायक कृष्ण-काव्य की ओर मुड़े और इनमें भक्ति का रंग चढ़ गया। रीतिबद्ध रचना का पर्यवसान कृष्ण-भक्ति में नहीं होता, यद्यपि शास्त्रसंमत विधि के अनुकूल उनकी शृंगारिक रचनाएँ राधा और कृष्ण के प्रेम को ही लेकर चलती हैं, श्रीकृष्ण के जीवन की स्वच्छंद वृत्तियों में उनकी प्रवृत्ति नहीं लक्षित होती, वे श्रीकृष्ण या राधा के क्रीड़ा-कौतुकमय जीवन में डूबने के स्थान पर नायक-नायिका के हावभाव में डूबे दिखाई देते हैं। पर इन उन्मुक्त विचरण करनेवालों ने उनके मुक्त जीवन की रमणीयता बारंबार सामने की है। रसखानि को इस प्रकार की रचना का संस्थापक मानने में इसी लिये कोई बाधा नहीं दिखाई देती। उनकी रचनाओं में भी कुछ रीतिबद्ध हैं, कुछ स्वछंद वृत्ति का पोषण करनेवाली और कुछ श्रीकृष्ण के स्वच्छंद जीवन का पूर्ण आभास देनेवाली भक्ति-भावित। यह रसखानि की स्वच्छंद वृत्ति की ही देन है, जो उन्हें भक्ति के क्षेत्र में ले जाकर, "मानुस हौं तौ वहै रसखानि बसौं बन गोकुल गाँव के ग्वारन।" आदि कहने की प्रेरणा उत्पन्न करती है। इसलिये एक ओर इन स्वच्छंद कवियों की कुछ रचनाएँ यदि रीतिबद्ध कविता करनेवालों से मिलती हैं तो कुछ उनसे पृथक् भी दिखाई देती है, क्योंकि इनकी रीतिबद्ध रचना में भी शास्त्र-स्थिति-संपादन की इच्छा स्वल्प और भावाभिव्यंजन की रुचि प्रभूत परिमाण में है। दूसरी ओर ये भक्त कवियों से जा मिलते हैं, पर उनसे भी पृथक् लक्षित होते हैं, क्योंकि इनकी रचनाओं में भक्ति की स्थिरता के स्थान पर स्वच्छंदता की चपलता और भाव-धारा का वेग है। इसलिये रसखानि को, कृष्ण-भक्त मानते और जानते हुए भी, स्वच्छंद गायकों की श्रेणी में रखना प्रवृत्तियों के विभाजन के सुभीते के लिये अपेक्षित है। कवित्त-सवैयों की ओर ये इसी से प्रवृत्त थे। संगीत के बंधनों से भी ये अपने को उसी प्रकार मुक्त रखना चाहते थे जिस प्रकार काव्य के शास्त्र-संमत बंधनों से। देवी-देवताओं के प्रति रसखानि की उदार वृत्ति भी यही बताती है कि ये वस्तुतः कृष्ण-भक्त होते हुए भी सांप्रदायिक बंधनों से अपने को पृथक् रखना चाहते हैं। 'भागवत' के नवम स्कंध की कथा को भी बाँधने के विचार से सूर ने रामचरित भी पदों में गाया, पर साफ जान पड़ता है कि उनकी रुचि वहाँ से काम निबटाकर भागने का यत्न कर रही है। रसखानि या 'आलम' की रचनाओं से यह प्रतीत नहीं होता। 'भागवत' का आधार लेकर चलने के कारण राम-कथा भी कहनी ही पड़े, यह बंधन तो इनके सामने नहीं था, फिर भी ये ऐसा करते हैं, इसका कारण इनकी स्वच्छंद, पर उदार वृत्ति ही है। पंच-देवोपासना की जो प्रतिष्ठा पुराणों की भावना के प्रसार के कारण हो गई थी और जिसके परिणाम स्वरूप इन देवों की अभिन्नता प्रतिपादित हो चुकी थी, इन्होंने उसी का ग्रहण किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ५२—अंक ३ [नवीन संस्करण] कार्त्तिक-पौष—सं० २००४

मालवा का प्रद्योत राजवंश

श्री सूर्यनारायण व्यास

प्रसिद्ध संवत्-प्रवर्तक महावीर शकारि विक्रमादित्य ने संवत् की स्थापना के साथ ही जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण राजनीतिक कार्य किया वह था मालवा में गण-शासन-पद्धति की पुनःस्थापना। मालवों के कुछ परिचय तथा उनके और क्षुद्रकों के परस्पर संबंध के विषय में लोग जानते हैं। विक्रमादित्य के शासन-काल की घटनाओं के समझने, उनके अस्तित्व को हृदयंगम करने एवं उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों को जानने के लिये उनसे पूर्व काल के राजाओं का जितना ऐतिहासिक ज्ञान हो सके उतना ही अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार के ज्ञान से विक्रमादित्य के जीवन का भी उद्घाटन होगा।

महाराज विक्रमादित्य के उदय-काल से पूर्व के राजाओं की वंशावलियाँ पुराणों से प्राप्त होती हैं, जो महात्मा बुद्ध और महावीर गौतम के समय के पूर्व से भी आरंभ होकर अभीष्ट काल तक शृंखलाबद्ध चली आती हैं। जैन और बौद्ध इतिहासकारों द्वारा किए गए उल्लेखों से इन वंशावलियों की पुष्टि होती है। इससे पौराणिक इति-क्रम का विशेष उद्घाटन भी होता है। अतः यहाँ हम उनको भी भुला नहीं सकते।

महावीर या जैन संवत् का आरंभ विक्रम-संवत् से ४७० वर्ष पूर्व एवं शकाब्द से ६०५ वर्ष पूर्व माना जाता है। इसी प्रकार अनेक जैन विद्वानों ने गणना कर विक्रम-संवत् का आरंभ भी ४७० महावीर निर्वाण-संवत् में स्वीकार किया है। यहाँ एक उद्धरण देना यथेष्ट होगा—

मह मुक्खमयणाओ पालय-नंद-चंदगुत्ताइ राइसु वोलीणेसु चउसय सत्तरेहिं वासेहिं विक्कमाइच्चो राया हो ही। तत्थ सट्ठी वरिसाणं पालगस्स रज्जं पणपन्नसयं नंदाणं; अट्ठुत्तरं सयं मोरियवंसाणं, तीसं पूसमित्तस्स, सट्ठी बलमित्त भानुमित्ताणं, चालीसं नरवाहणस्स, तेरस गद्दभिलस्स, चत्तारि सगस्स। तओ विक्कमाइच्चो सो साहिय सुवण्णपुरिसो पुहविं अरिणं काउं निय संवच्छरं पवत्ते ही[1]।

१—श्री जिनप्रभ सूरि कृत पावाकल्प, पत्र ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महावीर-निर्वाण के ४७० वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य राजा होगा। उससे पहले पालक, नंद, चंद्रगुप्त आदि राजा होंगे। इस ४७० वर्ष की अवधि के राजाओं की सूची इस प्रकार है—पालक ६० वर्ष, नवनंद १५५ वर्ष, मौर्यवंश १०८ वर्ष, पुष्यमित्र ३० वर्ष, बलमित्र भानुमित्र ६० वर्ष, नरवाहन ४० वर्ष, गर्दभिल्ल १३ वर्ष, शक राजा ४ वर्ष। इस प्रकार कुल ४७० वर्ष होता है। इसके पश्चात् विक्रमादित्य होगा। यह राजा सुवर्ण पुरुष को सिद्ध करेगा एवं पृथिवी को उऋण कर अपना संवत् भी चलाएगा।

इन राजाओं का शासन-काल अन्य जैन-ग्रंथों के अनुसार इस प्रकार लिखा प्राप्त होता है—

पट्टावली गाथा (प्राकृत)		हरिवंश पुराण	
पालक और प्रद्योत	६० वर्ष	पालक	६० वर्ष
नंद	१५५ ,,	नंद	१५५ ,,
मौर्यवंश	१०८ ,,	मौर्य	४० ,,
पुष्यमित्र	३० ,,	पुष्यमित्र	३० ,,
बलमित्र, भानुमित्र	६० ,,	अग्निमित्र, वसुमित्र	६० ,,
नरवाहन शक	४० ,,	गर्दभिल्ल रासभ	१०० ,,
गर्दभिल्ल	१३ ,,	नरवाह	४२ ,,
शक	४ ,,	शक	४ ,,
	जोड़ ४७०		जोड़ ४९१

अन्यत्र भी एक गाथा इसी अभिप्राय की मिलती है, जो मेरुतुंग कृत 'स्थिविरावली' में उद्धृत है। इसका उत्तरार्द्ध 'कालकसप्तिका' में भी पाया जाता है। संपूर्ण गाथा प्रकीर्णक गाथा-पत्रों में अनेक जगह पाई जाती है। गाथा यह है—

विक्कम रज्जारम्भा पुरओ सिरी वीर निव्वुई भणिया।
सुंन्न मुंनि वेयँ जुत्तो विक्कम कालाउ जिणकालो।

पुराणों की अनुश्रुतियों के आधार पर अवंति और मगध की राजवंशावली अधिक विस्तृत और पूर्ण तैयार की जा सकती है। पुराणों द्वारा ऐसा ज्ञात होता है कि बृहद्रथ के वंशवालों की एक शाखा वीतिहोत्रिओं के नाम से अवंति में राज्य करती थी और दूसरी शाखा बृहद्रथ वंश के नाम से वाराणसी या मगध में। पुराणों के अनुसार अवंति-शाखा को पुलक ने एवं वाराणसी या मगध-शाखा को शुनक ने समाप्त कर अपने अपने पुत्रों का दोनों राज्यों पर क्रम से अभिषेक कर दिया। वर्णन-शैली एवं बृहद्रथ वंशियों के अंत करने के दोनों स्थानों के वर्णन के परस्पर अत्यधिक समान होने के कारण ऐसा लगता है कि एक ही व्यक्ति का उल्लेख दोनों स्थानों पर किया गया है। इससे यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमित होता है कि अवंति के राजवंश का उल्लेख करते समय लेखकों या लिपिकर्ताओं के प्रमाद से, अथवा संपादक की ही असावधानता से, शुनक के स्थान में पुलक लिखा गया है। इससे संबद्ध पुराणों के श्लोक नीचे दिए जाते हैं—

अवंति—

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु।
पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति।
मिषतां क्षत्रियाणां च प्रद्योतं पुलको बलात्।
स वै प्रणत सामन्तो भविष्यो नयवर्जितः।
त्रयोविंशत्समा राजा भविता मन्मथातुरः।
चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः।
विशाखयूपो भविता नृपः पंचाशतं समाः।
एक विंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति।
भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो नन्दिवर्धनः।
अष्टत्रिंशच्छतं भाव्या प्रद्योताः पंच ते नृपाः[1]।

मगध—

द्वात्रिंशति नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः।
पूर्णं वर्ष सहस्रन्तु तेषां राज्यं भविष्यति।
जयतां क्षत्रियाणां च बालकः पुलको भवेत्।
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति।
वाराणस्यां सुतं स्थाप्य स यास्यति गिरिव्रजम्।
शिशुनाकश्च वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति।
काकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशत्प्राप्स्यते महीम्।
ततस्तु विंशति राजा क्षेमधर्मा भविष्यति।
चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजा प्राप्स्यते ततः।
अष्टत्रिंशति वर्षाणि बिंबिसारो भविष्यति।
अजातशत्रुर्भविता पंचत्रिंशत्समा नृपः।
पंचत्रिंशत्समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति।
उदायी भविता तस्मात् त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः।
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्।
गंगाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति।
चत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नंदिवर्द्धनः।
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति।

१—देखिए मत्स्य पुराण, अध्याय २७२, श्लोक १–५। वायु पुराण, अध्याय ९९, श्लोक ३०९–१४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्येते भवितारो वै शैशुनाका नृपा दश ।
शतानि त्रीणि वर्षाणि षष्टि वर्ष शतानि तु ।
शिशुनाका भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबन्धवः[1] ।

प्रसिद्ध जैन-ग्रंथ 'तिलोय-पराणत्ति' के अनुसार भगवान् महावीर के मोक्ष के समय अवंति में प्रद्योत का पुत्र पालक अभिषिक्त हुआ था—

जं काले वीर जिणो णिस्सेयस सम्पयं समावराणो ।
तक्काले अभिसित्तो पालयणामो अवंति सुदो ।। ६५ ।।

शिशुनाकों के प्राचीन इतिहास के विषय में यहाँ कुछ विस्तारपूर्वक जानने की आवश्यकता है । शिशुनक वंश मूलतः काशी का राजवंश था । पुराणों के लेख के अनुसार प्राचीन काल में काशी में काशी, काश्य या काश्य-प वंश के राजा राज्य करते थे । 'ब्रह्मांड पुराण' के लेखानुसार यह वंश सुनहोत्र या सुहोत्र का वंश था । इसी वंश में दिवोदास और प्रतर्दन जैसे विजयी और बलवान् सम्राटों ने जन्म लेकर काशी का उद्धार तालजंघ आदि शत्रुओं से किया था । सुनहोत्र का एक पुत्र गृत्समद वैदिक ऋषि हो गया है, जिसकी रचना प्रधानतः 'ऋग्वेद' के दूसरे मंडल में संगृहीत है । गृत्समद का पुत्र शुनक और पौत्र शौनक था । इसी शुनक वंश की संतान शिशुनक, और शिशुनग भी, कही गई है । इसी से अपत्यवाचक शब्द शिशुनक, शिशुनाक, शिशुनाग, शैशुनाग आदि बन गए । अतः इस वंश का शुद्ध नाम शिशुनक या शिशुनाक मानना ही ठीक है, और सब नाम इसके विकार हैं । इस वंश का आरंभ विक्रम से ६५१ वर्ष या ईसा से ७०८ वर्ष पूर्व हुआ था । इसके प्रथम राजा शिशुनाग ने ४० वर्ष तक राज्य किया था । शेष राजाओं का राज्य-काल इस प्रकार है—

२—काकवर्ण ३६ वर्ष। कहीं कहीं ४० वर्ष भी लिखा है ।

३—क्षेमधर्मा । २० वर्ष । कहीं कहीं इसका नाम क्षत्रधर्मा भी लिखा है ।

४—क्षत्रौजा ४० वर्ष ।

५—बिंबिसार ३८ वर्ष । कहीं कहीं इसका राज्य-काल २८ वर्ष लिखा है, जो अशुद्ध है । इसने एक विवाह अयोध्या की राजकुमारी से और दूसरा लिच्छवी राजकुमारी से किया था । महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर दोनों ही इस राजा के समकालीन थे ।

६—अजातशत्रु ३५ वर्ष । इससे श्रावस्ती या अयोध्या के महाराज प्रसेनजित् से युद्ध हुआ । लिच्छवियों को इसने परास्त किया एवं वहाँ का राजा चैत्र या चेटक, जो इसका मामा था, मारा गया । चैत्र का पुत्र शोभनराज भागकर अपने श्वशुर कलिंग-

---

१—देखिए मत्स्य पुराण, अध्याय २७२, श्लोक ६-१३ । वायु पुराण, अध्याय ९९, श्लोक ३१४-२२ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पति सुलोचन के यहाँ रहने लगा और वहीं उसने अपना वंश चलाया। इसके शासन के दूसरे वर्ष भगवान् महावीर का मोक्ष और आठवें वर्ष महात्मा बुद्ध का निर्वाण हुआ।

७—प्रद्योत २३ वर्ष। मथुरा के राजा धुंधुकार का प्रद्योत नामक बलशाली क्षत्रिय मंत्री था। पृथ्वीराज की मौसी के पुत्र जयचंद्र के यहाँ प्रद्योत, विद्योत आदि गए थे।[१] 'भविष्य पुराण' में इंद्रप्रस्थ के राजा का नाम प्रद्योत बताया गया है। उसकी कन्या का नाम परिमला था, जिसका विवाह कच्छप राजा के पुत्र कमलपति के साथ हुआ था।[२] 'महाभारत'[3] में लिखा है कि प्रद्योत कुबेर की सभा के एक यक्ष का नाम था।

सूर्यवंश के अंतिम नरेश रिपुंजय अथवा अरिंजय के प्रधान शुनक ने रिपुंजय की हत्या कर अपने पुत्र प्रद्योत को शासक बना दिया था। 'वायु पुराण' में शुनक के स्थान पर सुनीक नाम आया है। इस वंश में प्रद्योत, पालक, विशाखयूप, जनक अथवा अजय (नंदिवर्धन या नंदवर्धन अथवा वर्तिवर्धन) इन पाँच राजाओं के होने का उल्लेख है। इन्होंने १३९ वर्ष तक शासन किया था।[४] अनुमान से इनका शासन ई० पू० ७४५ से ६९० तक निश्चित किया जा सकता है।

'भविष्य पुराण' के लेखानुसार प्रद्योत क्षेमक का पुत्र है, परंतु क्षेमक अथवा शुनक एक ही थे। प्रद्योत के पिता का वध म्लेच्छ द्वारा हुआ था, अतः नारद के कहने पर उसने म्लेच्छ यज्ञ कराया था, जिसमें यज्ञ-कुंड सोलह कोसों का था। उसमें वेद-मंत्रों द्वारा आहूत हारहूण, बर्बर, गुरुंड, शक, खस, यवन, पल्लव, रोमज, खरसंभव म्लेच्छों, आदि द्वीप के म्लेच्छों, कामरूप तथा समुद्र के मध्यस्थित चीन जाति के म्लेच्छों को उसने भस्म किया। इसी लिये प्रद्योत 'म्लेच्छहंता' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[५]

पुराणों में इसे पुलक (या शुनक) का पुत्र कहा है। किंतु 'कथासरित्सागर' में इसे महेंद्र का पौत्र और जयसेन का पुत्र कहा है। इसका अर्थ यही है कि पुलक या शुनक इसका पूर्वज था, एवं शिशुनक का नाम जयसेन रहा होगा। वीतिहोत्र वंश अत्यंत प्राचीन वंश था और महाभारत युद्ध के पश्चात् २० वीतिहोत्री सम्राट् अवंति में राज्य करते रहे। अंतिम वीतिहोत्री सम्राट् का मंत्री पुलक, शुनक, शिशुनक या जयसेन था, जिसने राजा को मारकर अपने पुत्र प्रद्योत का अभिषेक वहाँ किया। प्रद्योत की सेना बहुत बड़ी और प्रचंड थी, अतः प्रद्योत 'महासेन' तथा 'चंड' की उपाधियों से प्रख्यात था। यह बहुत कामी था। किसी शबर या भील सरदार की कन्या अंगारवती

१—भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, ३। ५।

२—वही, ३। २७।

३—महाभारत, स० १०, १६।

४—वायु पुराण, भाग १२। १; विष्णु पुराण ४। २२, ४२; वायु पुराण, २। ३७।

५—भविष्य पुराण, स० १। ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विवाह कर इसने अपनी सेना को सुसंघटित एवं बलवान् बना लिया था, इसी लिये उसका आतंक भी विशेष था।

इसकी कन्या वासवदत्ता का विवाह वत्सराज उदयन से हुआ था। वत्सराज वंश और प्रद्योत के पुलक वंश का संबंध भी यहाँ जान लेना आवश्यक है। पुराणों के लेखानुसार दो वंश चले थे—(१) वत्स का वंश और (२) गर्ग का वंश। वत्स का वंश प्रधान वंश होने के कारण बहुत काल तक काशी में ही राज्य करता रहा। अलर्क, केतुमान् आदि ने इस वंश को प्रसिद्ध किया। मंदालसा जैसी विदुषी देवियों ने इस वंश की शोभा बढ़ाई। लगभग उसी काल में काशी के पश्चिम में वत्स राज्य की भी स्थापना हुई और यह वंश वत्स में आकर राज्य करने लगा। वत्स-शाखा का अंतिम राजा वेणिमान् निःसंतान मर गया और गार्ग्य अर्थात् गर्ग वंश का ही कोई राजकुमार वत्स की गद्दी पर बैठा। इस प्रकार लगभग १५ पीढ़ी पश्चात् ये दोनों शाखाएँ पुनः एक हो गईं। इस घटना को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि बृहद्रथों के यश के (मगध में) अंत होने पर शिशुनक वाराणसी से ही मगध की राजधानी गिरिव्रज को क्यों गया था, मगध की राजधानी पर अधिकार करने को ही तो वह वहाँ गया था। इसी घटना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मगध के शिशुनाग क्यों इतनी शीघ्रता और सरलता से वत्स और अवंति के राजवंशों का सहयोग प्राप्त कर अधिक उन्नति कर सके।

बौद्ध ग्रंथों में प्रद्योत को महात्मा बुद्ध का समकालीन उल्लिखित करते हुए 'प्रद्योतकुमार' कहा है। इसका अर्थ यही है कि महात्मा बुद्ध के जीवन-काल में प्रद्योत कुमार ही था, क्योंकि प्रद्योत के अभिषिक्त होने के लगभग डेढ़ दो वर्ष के अवांतर में ही उनका निर्वाण हो गया था। उस समय वत्स में उदयन राज्य करता था।

८—पालक—प्रद्योत की रानी अंगारवती से पालक और गोपालक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे तथा वासवदत्ता नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई थी। पालक प्रद्योत का उत्तराधिकारी हुआ। इसका राज्य-काल २४ वर्ष है। इसके शासन के अंतिम काल में अवंति में विद्रोह हुआ, जिसमें यह मारा गया और इसका भाई गोपालक गद्दी पर बैठा। जैनवंशावलियों में इसका राज्याभिषेक अजातशत्रु के शासन के छठे वर्ष में लिखा मिलता है। यह उल्लेख विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि जैन और बौद्ध इतिहास के लेखों में उदयन का २४ वर्ष का राज्य-काल भूल से छोड़ दिया गया है।

'कथासरित्सागर' के अनुसार वत्सराज उदयन ने दिग्विजय कर अपने साले पालक के भाई गोपालक को विदेह या वैदेह का शासक बना दिया था और उस समय पालक अवंति में उदयन के प्रतिनिधि के रूप में शासन करता था।

९—दर्शक—यह शिशुनाग वंश का सातवाँ सम्राट् था। इसका राज्य-काल ३५ वर्ष है। यह अजातशत्रु का पुत्र था। बौद्ध और जैन इतिहास-लेखकों ने इसे और इसके राज्य-काल को भूल से न गिनकर इतिहास की शृंखला में विचित्र गड़बड़ी उत्पन्न कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी है। इसने अपने राज्य के चतुर्थ वर्ष में पाटलिपुत्र को मगध की स्थायी राजधानी का रूप दिया।

इसकी पुत्री पद्मावती थी और पुत्र सिंह वर्मा था। पुत्री का विवाह वत्सराज उदयन से हुआ था। 'कथासरित्सागर' के अनुसार उदयन को मगध का राज्य पद्मावती के विवाह के अवसर पर ही प्राप्त हुआ था। उस समय उदयन ने सिंह वर्मा को चेदि का शासक बना दिया था।

१०—गोपालक—अवंति के प्रद्योत वंश का यह तीसरा राजा है। राज्यक्रांति के अवसर पर जब पालक मारा गया तब यह विदेह से आकर यहाँ का राजा हुआ। पुराणों में इसका दूसरा नाम विशाखयूप भी लिखा है। इसका राज्य-काल ५० वर्ष है।

वत्सराज उदयन के साथ पालक और गोपालक की भगिनी वासवदत्ता के व्याहे जाने का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसके साथ दर्शक की पुत्री तथा सिंह वर्मा की बहिन पद्मावती के विवाह का उल्लेख भी ऊपर हुआ है। अतः यह मानना उचित है कि उदयन का पिता परंतप (अथवा इसका नाम शतानीक, जय अथवा कुछ और रहा होगा) तथा प्रद्योत और दर्शक समकालीन थे। मगध के सिंहासन पर दर्शक के पश्चात् उदयन ही अभिषिक्त हुआ। उदयन के पीछे नंदिवर्धन वहाँ का राजा हुआ। इस प्रकार स्पष्ट है कि दो चार या दस पाँच वर्ष की अवधि में ही दर्शक और उदयन के शासन-काल में ही प्रद्योत और उसके दोनों पुत्रों का समय तथा अज और नंदिवर्धन के बीस वर्ष का राज्य-काल भी समाप्त हो जाना चाहिए। और यह समय ३५ + ३३ = ६८ वर्ष से अधिक नहीं हो सकता। किंतु पुराणों में इन पाँचों प्रद्योतों का समय १३८ वर्ष लिखा है। यह कैसे सम्भव है ? इसका समाधान यह है कि नंदिवर्धन ने उज्जयिनी का अपना २० वर्ष का राज्य-काल उसी समय समाप्त किया था जिस समय उदयन की मृत्यु हुई। इससे पूर्व उसका पिता अज या अजक (इसे कहीं कहीं सूर्यक भी लिखा है) २१ वर्ष राज्य कर चुका था। यही वत्सराज उदयन है। जान पड़ता है कि उज्जयिनी के विप्लव एवं पालक की हत्या में वत्सराज उदयन के मंत्रियों ने भी गुप्त रूप से भाग लिया होगा। और इस प्रकार वत्सराज उदयन अपने जीवन-काल में ही उज्जयन या पश्चिमी समुद्र-तट से मगध, विहार और उत्कल देश या पूरबी समुद्र-तट तक के देश का सम्राट् बन सका। पालक की मृत्यु के पश्चात् गोपालक उज्जयन में नाम को ही राजा रहा। वहाँ उस समय वास्तविक सत्ता और अधिकार तो अज या उदयन और उसके पुत्र नंदिवर्धन का था। ऊपर वत्स, मगध और अवंति के राजवंशों के पारस्परिक संबंध का उल्लेख करते हुए इन तीनों को एक ही महान् वंश की शाखा कहा गया है। पुराणों ने इन दो शाखाओं को एक में मिलाकर इनके राजाओं के राज्य-काल के वर्षों को भी मिला दिया है। वस्तुतः प्रद्योत वंशी राजाओं का क्रम और उनके राज्य-काल के वर्ष यों समझने चाहिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रद्योत	२३ वर्ष	
पालक	२४ ,,	
गोपालक	९ ,,	
अज	}	२१ ,,
गोपालक	}	२१ ,,
नंदिवर्धन	}	२० ,,
गोपालक	}	२० ,,
गोपालकुल	५० ,,	
योग	९७ वर्ष	

नंदिवर्धन और उसके पिता अज या उदयन के ४१ वर्षों को गोपालक के साथ और उससे अलग भी, इस प्रकार दो बार, गिन लेने के कारण पुराणों ने इसी ९७ वर्ष के समय को १३८ वर्ष समझ लिया।

अज या उदयन के संबंध में एक और बात भी जानने की है। प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता का ब्याह उदयन के साथ प्रद्योत की मृत्यु से २,४ वर्ष पूर्व ही हुआ होगा, क्योंकि इसके पश्चात् ही दर्शक की पुत्री से उसका ब्याह हुआ था। यह तो स्पष्ट ही है कि वासवदत्ता के विवाह के पश्चात् प्रद्योत अधिक काल तक जीवित नहीं रहा। यदि उदयन का विवाह वासवदत्ता से १५ और २० वर्ष की वय के मध्यवर्ती किसी वर्ष में माना जाय तो मगध के सिंहासन पर अधिकार प्राप्त करने के समय उसकी वय ६० वर्ष के लगभग रही होगी, क्योंकि पद्मावती के विवाह के पश्चात् लगभग २५ या ३० वर्ष तक दर्शक का राज्य करना सिद्ध होता है।

११—अज या उदयन—यह वत्सराज उदयन के नाम से अधिक विख्यात है। शिशुनाग वंश में यह आठवाँ और प्रद्योत वंश में चौथा गिना गया है। इसका राज्य-काल ३३ वर्ष है। इसे उदायी, उदयाश्व और सूर्य या सूर्यक भी कहा गया है। इसके विवाहों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। 'कथासरित्सागर' में पद्मावती के विवाह के प्रसंग में कहा है कि पद्मावती का पाणि-पल्लव एवं मगध की भूमि इसे एक साथ प्राप्त हुई—

ततः स वेदिमारुह्य तस्या जग्राह यत्करम्।
तदेवारभ्य तां प्राप तस्य पृथिव्याः करग्रहे॥

सिंहासनासीन होनेपर इसने पाटलिपुत्र या कुसुमपुर को राजधानी बनाया और इस प्रकार उज्जयन की गति का केंद्र भी वही हो गया। 'बृहत्कथा' के अनुसार इसने दिग्विजय की थी, जिसमें इसके मित्र और संभवतः श्वशुर पुलिंदक ने शबर-सेना से इसकी सहायता की थी। वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त को परास्त कर इसने बंगाल पर चढ़ाई की और वहाँ जयस्तंभ स्थापित किया। दक्षिण को जाती बार इसने कलिंग, दक्षिणी घाटों के पहाड़ी राजा, कावेरी, चोल नरेश, मुरलपति, गोदावरी तट के देश,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य भारत और सिंधु तटवर्ती 'तुरुष्क तुरग व्रातों' को परास्त कर पारसीकपति का शिर काट डाला था। इसने हिमालय प्रदेश में हूणों को हराया और कामरूपपति ने इससे मित्रता स्थापित की। कदाचित् दिग्विजय का यह संपूर्ण वर्णन अतिरंजनापूर्ण है। वास्तविकता इसमें थोड़ी ही होगी। उदयन की मानसिक प्रवृत्तियाँ तो वाजिद अली शाह जैसी ही थीं, ऐसा विश्रुत है। इसकी सभा में गाने-बजाने, मदिरा, नाच-रंग, शिकारी-सवारी आदि की ही धूमधाम रहती थी। फिर भी उदयन का जो कुछ भी उत्कर्ष हुआ होगा वह मगध की राजसत्ता प्राप्त करने के पश्चात् ही और विशेषतः पुलिंदराज की विशेष सहायता से ही ऐसा हुआ होगा।

अवंति राजवंश में उदयन की गणना स्वतंत्र रूप से भी की गई है। इससे जान पड़ता है कि मालव प्रांत मगध के अधीन नाम मात्र को रहा होगा, कार्य रूप में उसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकृत की जाती थी। पुराणों में प्रद्योत वंश के पालक और गोपालक या विशाखयूप के शासन-काल को अज और नंदिवर्धन के साथ मिलाकर गिन लेने की बात ऊपर कही गई है। यह संभव है कि पालक और गोपालक के जीवन-काल में ये दोनों सम्राट् वस्तुतः अवंति के सत्ताधीश होकर अवंतिपति भी कहलाते और उस वंश की राज-सूची में भी गिने जाते रहे हों; और प्रत्यक्ष रूप में अपनी राजधानी—मगध—के हस्तगत होने तक कौशांबी में ही रहते रहे हों। यदि ऐसा हो तो भी इसमें संदेह नहीं कि इतिहास ने अज का महत्त्व उसके पुत्र नंदिवर्धन के कारण ही स्वीकार किया है। अवंति के राजाओं या शिशुनाक वंश के सम्राटों के देवकुल से प्राप्त हुई उनकी प्रतिमाओं में अज और नंदिवर्धन की प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं। उनमें अज की प्रतिमा पर उसे केवल 'क्षोणीधीश' लिखा है, किंतु नंदिवर्धन को 'सर्वक्षेत्रपति' कहा है। इसी लिये अज की दिग्विजय कल्पित जान पड़ती है।

१२—नंदिवर्धन—यह शिशुनाक वंश का नवाँ राजा और प्रद्योत-शाखा का पाचवाँ या अंतिम राजा था। इसका राज्य-काल अवंति में २० वर्ष और मगध में ४० वर्ष रहा। यह वत्सराज उदयन या अज का पुत्र था। इसके दूसरे नाम वर्तिनंदि, वटनंदि, वेटनंदि और केवल नंदि या नंद भी हैं। इसने अपने पिता अज की प्रतिमा देवकुल में स्थापित कराई। इसकी प्रतिमा पर इसे 'सर्वक्षेत्रपति' कहा गया है। इससे जान पड़ता है कि यह बड़ा बलवान् और विजयी सम्राट् रहा। कुछ विद्वान् इसे पुराणों का कालाशोक भी कहते हैं।

दर्शक के पुत्र के अभाव में अवंति से आकर यह मगध के सिंहासन पर बैठा हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। अभी ऊपर कह आए हैं कि इसके पिता अज या उदयन को मगध का राज्य और पद्मावती एक साथ प्राप्त हुई थी। इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि उदयन ने विवाह के थोड़े समय पश्चात् ही मगध पर अधिकार कर लिया हो और उस समय इसने अपने पुत्र नंदिवर्धन को मगध का शासक बना दिया हो। मगध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंदिवर्धन का शासन-काल ४० वर्ष लिखा है और अज या उदयन का २३ वर्ष। अज का शासन-काल अवंति में २१ वर्ष है, अर्थात् मगध का राज्य हस्तगत करने से २ वर्ष पीछे पालक की मृत्यु के पश्चात् एवं गोपाल के ९ वर्ष राज्य कर लेने पर उदयन को अवंति का राज्य प्राप्त हुआ था। उस समय वह स्वयं अवंति (या वत्स) में और उसका पुत्र नंदिवर्धन मगध में शासन करता रहा। इस परिस्थिति में मगध प्रांत कुछ काल के लिये अवंति का शासित प्रदेश बन गया था। अवंति में अज के २० या २१ वर्ष समाप्त होते होते मगध में उसके २३ वर्ष एवं नंदिवर्धन के २० वर्ष समाप्त होते थे। इसके पश्चात् अज की मृत्यु हो गई। नंदिवर्धन के आगे के २० वर्ष अवंति में अज के पश्चात् गिन लिए गए, जब गोपाल भी पूर्ववत् वहाँ का नाम मात्र का राजा था और मगध में उसके ४० वर्ष के शासन-काल का २१ वाँ वर्ष आरंभ हुआ। इसी बीच नंदिवर्धन ने राज-सत्ता का केंद्र उज्जयिनी से राजगिरि परिवर्तित कर दिया।

१३—महानंद—यह शिशुनाग वंश का दशम और अंतिम राजा था। इसका राज्य-काल ४३ वर्ष है। महानंद का दूसरा नाम महानंदि भी था। 'कथासरित्सागर' में इसे योगानंद भी कहा गया है। इसके समय से उज्जयन का राजकीय महत्त्व समाप्त हो गया, अर्थात् तब से उज्जयन में राजवंश का कोई क्रम नहीं चला और मगध से उज्जयन का शासन एक प्रांत के रूप में होना आरंभ हुआ। यही कारण है कि आगे वहाँ के प्रद्योत वंश की राजावली का क्रम भी चालू नहीं रखा गया है।

यह बहुत प्रतापी और प्रबल था। पाणिनी इसकी सभा के रत्न थे। प्रसिद्ध नंद तो वस्तुतः यही है, जिस के कारण नंद वंश ने इतिहास में इतनी ख्याति प्राप्त की है। यह बहुत लोभी सम्राट् भी कहा गया है। ईरान का प्रसिद्ध धनपति नरेश कारूँ, जिसका खजाना लोकोक्ति में प्रचलित है, इससे कुछ ही पूर्व हो चुका था। संभवतः उसी के अनुकरण पर इसने ९९ कोटि स्वर्ण मुद्राओं का संग्रह किया था। उड़ीसा पर आक्रमण कर इसने वहाँ की राजधानी तोषली से ऋषभदेव की स्वर्ण प्रतिमा और बृहत् द्रव्य-कोष का हरण किया। उत्कल या उद्र (प्राकृत ओड्र) विजय के पश्चात् मगधपति प्राचोपति भी कहे जाने लगे। प्रसिद्ध यूनानी यात्री और राजदूत मैगास्थनीज ने इस प्रांत को प्रैसिआई लिखा है, जो प्राची का ही दूसरा रूप है। महानंद ने नंद वंश की प्रतिष्ठा के लिये नंद-संवत् की स्थापना की थी। अलबेरूनी ने लिखा है कि नंद-संवत् विक्रम से ४०० वर्ष पहले से गिना जाता है। मौर्यों ने संभवतः इस संवत् का उपयोग राजकीय रूप से बंद कर दिया था, किंतु कलिंग आदि देशों में यह व्यवहृत रहा होगा।

इसने शूद्रा स्त्री से विवाह कर संतानोत्पत्ति की थी, किंतु चंद्रगुप्त शूद्रा से नहीं उत्पन्न हुआ था। कौटल्य के 'अर्थशास्त्र' द्वारा ऐसा लक्षित होता है कि चंद्रगुप्त मौर्य नंदों का वास्तविक प्रतिभू था। उक्त ग्रंथ में लिखा है कि उस आचार्य ने नंदराज की गई हुई भूमि का उद्धार किया था; अर्थात् इसके पुत्र महापद्मनंद और इसके सुमाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि आठ पुत्रों को मारकर राज्यलक्ष्मी चंद्रगुप्त में स्थापित करने को ही वह नंदराज की खोई हुई भूमि का उद्धार करना कहता है। उसके मूल शब्द ये हैं—

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नंदराजगता च भूः ।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥१

'कथासरित्सागर' में तो स्पष्ट ही चंद्रगुप्त को सत्यनंद का पुत्र कहा है। अस्तु, शूद्रा स्त्री के साथ संबंध होने के कारण राज्याधिकार में शूद्र-वर्ग का प्रभाव अवश्य ही बढ़ा होगा, विशेषतः शूद्रा महिषी के निकटतम संबंधियों का, जैसा कि प्रायः सर्वत्र देखा जाता है और इसकी प्रतिक्रिया के रूप में उच्च वंश की प्रतिष्ठा के अभिमानी तथा पुराने मौल कर्मचारियों तथा पुरोहित आदि धर्माध्यक्षों में असंतोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था। जान पड़ता है कि ऐश्वर्य से मत्त महाराज ने ऐसे लोगों की कुछ भी परवाह न की। इसी लिये उसे उद्धत स्वभाव का कहा गया है।

महानंद के पश्चात् पुराणों में शिशुनाग वंश का अंत मानकर नवनंदों के वंश का उल्लेख किया गया है और उनका राज-काल भी १०० वर्ष कहा गया है। महानंद की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महापद्मनंद राजसिंहासन पर बैठा। वह भी अपने पिता के समान ही प्रबल था। विरोधी दल की उसके सामने भी कुछ नहीं चल पाती थी। जान पड़ता है कि महापद्मनंद के अंतिम शासन-काल में जब सिकंदर के आक्रमण के कारण संपूर्ण उत्तरी भारत और पंजाब तथा सीमाप्रांत आदि प्रदेशों में क्रांति-चक्र तीव्रता से चल रहा था तब पाटलीपुत्र के इन असंतुष्ट सूत्रधारों ने भी बाहर के राजपुरुष, सामंत, सैनिक, सचिव आदि से संपर्क स्थापित करने का अवसर प्राप्त किया और कौटल्य की सहायता से चंद्रगुप्त को नायक स्वीकार कर यहाँ भी क्रांति-चक्र प्रचालित किया। परिणामतः महापद्मनंद और उसके शूद्रागर्भज पुत्र हिरण्यगुप्त (या पुराणों के अनुसार सुमाली आदि आठ पुत्रों) का अंत करके इस नवनंद वंश की समाप्ति की। 'मुद्राराक्षस नाटक', 'कथासरित्सागर', 'बृहत्कथा' आदि प्राचीन ग्रंथों में ये सब बातें विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं।

नंद वंश के गौरव के प्रमाण में एक प्राचीन लेख के अनुसार यह कहा जा सकता है कि कुंतल देश, जो वर्तमान मैसूर राज्य की उत्तरी सीमा से मिला हुआ था, उनके अधिकार में था। कादंबवंशी नरेशों ने भी अपने को नंदवंशी ही स्वीकार किया है। ये कोंकण के मौर्यों पर भी विजय कर चुके थे, ऐसा जान पड़ता है, और कदाचित् हमारा यह अनुमान ठीक ही है, कि चंद्रगुप्त की माता मौर्य राजकुमारी ने भी इसी कोंकण या कुंतल-विजय के पश्चात् किसी संनिकट समय में ही नंदों के अंतःपुर में प्रवेश किया होगा।

महापद्मनंद एवं उसके पुत्रों के १०० वर्ष के शासन-काल के विषय में भी यहाँ

१—अधिकरण, १५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कहना आवश्यक है। नंद वंश वस्तुतः कोई स्वतंत्र वंश नहीं था, यह शिशुनाक वंश का ही एक अनुवंश था। इसे पुराणों की शैली के अनुसार शिशुनाक वंश में कहकर भी इसका राज्य-काल अलग गिन लिया गया है, जिससे इसके पृथक्त्व की भी रक्षा हो गई। महानंद के प्रताप की कथाएँ सुनकर ही तो सिकंदर की लड़ाकू सेना का साहस पंजाब से आगे बढ़ने का नहीं होता था, यह बात तत्कालीन यूनानी लेखकों के कथन से ही प्रमाणित होती है। महानंद की मृत्यु होने पर उसका पुत्र महापद्मनंद सिंहासन पर बैठा। यह भी बड़ा पराक्रमी था। सिकंदर के आक्रमण की बात सुनकर यह साहसी सम्राट् बीस सहस्र हाथी, दो लाख पदाति और असंख्य रथ और घोड़े लेकर उससे लड़ने के लिये आगे बढ़ा, किंतु सिकंदर और उसकी सेना ने इस समाचार को सुनकर इसे लड़ने का अवसर ही नहीं दिया। इतने प्रभावशाली राजवंश के राज्य-काल की गणना को अलग किए बिना भला पुराणकार किस प्रकार रह सकते थे, जब कि उनके ग्रंथों का एक प्रधान विषय "वंशानुवंश"-कीर्तन भी था! इसी लिये इस अनुवंश के १०० वर्ष लिखकर पुराणों ने आगे मौर्य राजाओं का उल्लेख करना आवश्यक समझा। 'मंजुश्रीकल्प' में इसकी वय ६६ वर्ष लिखी है।

१४—महापद्मनंद—शूद्रागर्भजात शिशुनाग वंश के नंद अनुवंश में जन्म लेनेवाले इस महाराज का उल्लेख पुराणों ने शुनक के महान् वंश में नहीं किया है। फिर भी पुराणों ने इसका महत्त्व—राजनीतिक महत्त्व—तो स्वीकार किया ही है। इसके पिता के समय से चले आनेवाले दोनों राजवंश विरोधी दल, अर्थात् पुरोहित, धर्माध्यक्ष आदि का वर्ग और राज-शक्ति को प्रधान वंश से शूद्रों के हाथ में जाते देखकर असंतुष्ट मुख्य राजवंश के लोग, तब तक ही शांत रहे जब तक युवा चंद्रगुप्त एवं आचार्य कौटल्य कार्य-क्षेत्र में नहीं आ सके थे।

पुराणों के लेखकों ने महापद्मनंद का शासन-काल पृथक् रूप से भी वर्णित किया है, तथा यह भी लिखा है कि नंदों का राज्य १०० वर्ष तक रहेगा और सुमाली आदि ८ नंद १२ वर्ष राज्य करेंगे—

महानन्दि सुतश्चापि शूद्रायाः कालसंवृतः।
उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तकृन्नृपः॥
ततः प्रभृतिः राजानो भविष्या शूद्रयोनयः।
एकराट् स महापद्मः एकच्छत्रो भविष्यति॥
अष्टाशीति तु वर्षाणि पृथिवीं पालयिष्यति।
तत्पश्चात्सुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः॥
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात्।
उद्धरिष्यति तान्सर्वान् कौटल्यो वै द्विजर्षभः॥

"अष्टाशीति तु वर्षाणि" के स्थान पर "अष्टाविंशति वर्षाणि" पाठ भी कुछ विद्वानों ने स्वीकार किया है। पुराणों का यह कथन कुछ अधिक स्पष्ट नहीं है। महापद्मनंद को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारकर गद्दी पर बैठने के पश्चात् चंद्रगुप्त मौर्य ने सुमाली आदि को राज्य करने ही कहाँ दिया होगा ? फिर, 'कथासरित्सागर' में महापद्मनंद के पुत्र का नाम हिरण्यगुप्त लिखा है, जिसे चंद्रगुप्त ने कैद कर लिया था। वस्तुत: नंदों में नंदिवर्धन और महानंद का राज्य-काल ८३ वर्ष तक था, इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। ये प्राचीन नंद थे। नव-नंदों में महापद्मनंद और उसका पुत्र हिरण्यगुप्त, अथवा केवल इसका पिता ही गिना जा सकता है, जिसने कुछ काल तक राज्य किया होगा। नवनंद शब्द का अर्थ ९ नंद लेना एवं नंद के पुत्रों की संख्या ८ गिनना केवल पुराणों के इसी लेख के आधार पर है कि सुमाली आदि ८ पुत्रों ने १२ वर्ष राज्य किया। किंतु यह कथन भ्रमपूर्ण जान पड़ता है। पुराणकथित महापद्मनंद का ८८ या २८ वर्ष का शासन-काल बहुत अधिक है। प्रजा में विद्रोह की उपस्थिति में इतने लंबे समय तक कोई भी राजा शांतिपूर्वक शासन नहीं चला सकता। सच बात तो यह है कि महापद्मनंद और उसके पुत्रों के १०० वर्ष के शासन की बात किसी प्रकार भी सिद्ध होती नहीं जान पड़ती और न उस पर सहसा विश्वास ही होता है। हमारे विचार से महापद्मनंद एवं उसके पुत्र हिरण्यगुप्त अथवा सुमाली आदि ८ पुत्रों का संयुक्त'शासन १५ या १७ वर्ष से अधिक नहीं था। इस प्रकार नंदों के राज्य के लगभग १०० वर्ष भी गिने जा सकते हैं—

नंदिवर्धन	४० वर्ष
महानंदि	४३ वर्ष
महापद्मनंद हिरण्यगुप्त या सुमाली आदि	} १५ वर्ष
योग	९८

सही बात यही जान पड़ती है कि सिकंदर की चढ़ाई के समय महापद्मनंद ही मगध में राज्य करता था। चंद्रगुप्त मौर्य ने महापद्मनंद और उसके पुत्रादि को मार तुरत सिंहासन पर अधिकार कर अपना राज्याभिषेक करा लिया होगा। यह घटना ईसा से ३२४ वर्ष पूर्व और विक्रम-संवत् से २६८ वर्ष पूर्व की है। यह भी संभव है कि महापद्मनंद की मृत्यु के पश्चात् लगभग १२ वर्ष तक, या इससे कुछ कम, हिरण्यगुप्त आदि इधर उधर विद्रोह फैलाते घूमते रहे हों और उस काल को भी उक्त १०० वर्ष में गिन लिया गया हो। इस अनुमान में यदि कुछ सत्यांश है तो महापद्मनंद का राज्य-काल वही समझा जायगा जो विद्रोह-काल को १५ वर्ष में से कम करने पर शेष रहेगा। हिरण्यगुप्त या सुमाली आदि भी नंद थे, और वे भी अपने समय में अपने को महानंद कहते रहे होंगे। अत: यदि सिकंदर और उसके साथियों ने अपने लेखों द्वारा इसी हिरण्यगुप्त या सुमाली की ओर संकेत किया हो तो आश्चर्य नहीं। इस अनुमान से संगति अधिक सुविधापूर्वक बैठ जाती है। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंश भाषा के कतिपय अन्य दिगंबर जैन ग्रंथ

श्री अगरचंद नाहटा

अपभ्रंश-साहित्य केवल हिंदी ही नहीं वरन बँगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, मगही, भोजपुरी, मैथिली यावत् सिंधी, पंजाबी और उड़िया साहित्य की भी संमिलित निधि है। अपभ्रंश के इन भाषाओं का मूल होने के कारण इनके क्रमिक विकास एवं शब्द-भांडार के अध्ययन के लिये इसका (अपभ्रंश का) अध्ययन अत्यावश्यक है। परवर्ती समग्र भाषा-साहित्य अपभ्रंश-साहित्य से प्रभावित है। संस्कृत-साहित्य के ऋण से भी इसका ऋण अधिक एवं मूल्यवान् प्रतीत होता है, अतः इस भाषा के साहित्य का सांगोपांग अध्ययन बहुत ही आवश्यक एवं समीचीन है।

इस साहित्य के सर्वाधिक, या यदि समग्र कह दें तो भी अत्युक्ति नहीं होगी, निर्माण का श्रेय जैनों को ही है, पर खेद है कि अभी तक जैन-भांडारों का बहुत ही कम अवलोकन हुआ है। अतः अभी तक इसके स्वल्प साहित्य का ही पता चल सका है। परंतु ज्यों ज्यों इनका निरीक्षण होता जा रहा है त्यों-त्यों नित्य नए ग्रंथ प्रकाश में आते जा रहे हैं। पुस्तकों का मूल्यांकन भी होने लगा है, इसलिये इस साहित्य का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

इस महत्त्वपूर्ण साहित्य के परिचय एवं प्रकाशन का प्रयास करनेवालों में डा० हीरालाल जी जैन का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के वर्ष ५० अंक ३–४ में इसका परिचय दिया है। अन्य प्रसिद्ध ग्रंथों का परिचय देते हुए अंत में वे स्वयं लिखते हैं कि "लेख तो मैं समाप्त करता हूँ किंतु अपभ्रंश-साहित्य का परिचय अभी समाप्त नहीं हो सका।" अतः आपके लेख में उल्लिखित ग्रंथों के अतिरिक्त जिन ग्रंथों का मुझे पता चला है उनका परिचय कई लेखों द्वारा कराने का विचार है; क्योंकि इस भाषा का साहित्य बहुत ही समृद्ध है। सैकड़ों छोटी बड़ी रचनाएँ मेरी जानकारी में आ चुकी हैं। इसका एक मात्र कारण जैन-ज्ञान-भांडारों से मेरा निकटतम एवं अत्यधिक संबंध है।[1]

डा० हीरालाल जी का परिचय दिगंबर भांडारों से विशेष है और मेरा श्वेतांबर भांडारों से। अतः मेरे लेख संभवतः आपके लेखों के पूरक स्वरूप हों। आपने अपने लेख में श्वेतांबर विद्वानों में से केवल तीन (हेमचंद्र, सोमप्रभ एवं हरिभद्र सूरि) का ही निर्देश किया है, अतः पचीसों अन्य अपभ्रंश-साहित्य-सेवी श्वेतांबर विद्वानों का परि-

---

१—पंद्रह हजार हस्तलेख तो लेखक के निजी संग्रहालय में ही विद्यमान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चय अभी अपेक्षित है। यहाँ केवल कतिपय नवीन ज्ञात दिगंबर जैन अपभ्रंश रचनाओं का परिचय देना ही अभीष्ट है।

यहाँ एक ऐतिहासिक सत्य का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है। वह यह कि अपभ्रंश का श्वेतांबर तथा दिगंबर-साहित्य एक दूसरे का पूरक है। दिगंबर-साहित्य में प्रबंध-काव्यों की अधिकता है और श्वेतांबर-साहित्य में लघु काव्यों एवं मुक्तक रचनाओं की अधिकता। दिगंबर-अपभ्रंश-साहित्य में आख्यायिकाएँ एवं कुछ औपदेशिक काव्य ही उपलब्ध हैं और श्वेतांबर-साहित्य विविधताओं का भांडार है। दिगंबर-साहित्य में बड़े बड़े ग्रंथ हैं। मगर इनकी संख्या कम हैं। उक्त दोनों प्रकार के साहित्यों की शैलियों में मौलिकता है, और दोनों प्रकार के साहित्यों में परवर्ती साहित्य को प्रभावित करने की अद्भुत एवं असाधारण क्षमता है। समग्र अपभ्रंश-साहित्य के आलोक में परवर्ती रचनाओं पर विचार करने पर ही उसके चमत्कार के अनोखे दर्शन होंगे।

दिगंबर जैन ग्रंथों की एक सूची कई वर्षों पूर्व श्रीयुत नाथूराम प्रेमी ने प्रकाशित की थी, पर उनकी पूर्ण एवं व्यवस्थित सूची अभी तक नहीं दिखाई पड़ी। इसके लिये मैंने एक लेख 'अनेकांत' के वर्ष ४, अंक ५ में प्रकाशित कर दिगंबर विद्वानों का ध्यान इस आवश्यक कार्य की ओर आकृष्ट किया था। 'अनेकांत' के संपादक श्री जुगुलकिशोर मुख्तार का ध्यान इस ओर तो पहले से ही था, मेरे लेख ने एक नई प्रेरणा की और उसी अंक से दिल्ली आदि के कतिपय दिगंबर ग्रंथ-भांडारों की सूची प्रकाशित होने लगी और श्री परमानंद शास्त्री को उक्त भांडारों के अवलोकन के लिये प्रेरित किया गया, फलतः आमेर के महेंद्रकीर्ति भांडार में ही २५ अज्ञात अपभ्रंश काव्यों की उपलब्धि हुई, अन्य भांडारों के भी कतिपय नवीन अपभ्रंश-ग्रंथ मिले। कई ग्रंथों पर परिचयात्मक स्वतंत्र लेख भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस लेख में मुख्यतः उन्हीं ग्रंथों का परिचय दूँगा जिनकी जानकारी उक्त 'अनेकांत' पत्र से प्राप्त हुई है, एवं जिनका निर्देश डा० हीरालाल जी के लेख में नहीं आ पाया है।

नवीन काव्यों का परिचय देने के पूर्व डा० हीरालाल जी के लेख के संबंध में नवीन ज्ञातव्य बातें लिख देना आवश्यक समझता हूँ। अतः आपके लेख में लिखित कवियों एवं कृतियों के संबंध में संक्षेप में नवीन जानकारी नीचे दी जा रही है।

१—अब्दुल रहमानरचित 'संदेश रासक' सिंघी जैन-ग्रंथ-माला के ग्रंथांक २२ में श्री मुनि जिन विजय जी एवं श्री हरिवल्लभ भायाणी द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हो चुका है। पं० बेचनदास जी ने इसके संबंध में 'भारतीय विद्या' के वर्ष ३ में एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया है।

२—वीररचित 'जंबूस्वामी चरिउ' का रचना-काल सं० १०७६, माघ शुक्ल १० है। इस काव्य एवं कवि के संबंध में पं० परमानंद शास्त्री का 'अपभ्रंश भाषा का जंबूसामि चरित और महाकवि वीर' नामक लेख 'प्रेमी-अभिनंदन-ग्रंथ' में प्रकाशित हो चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—जयमित्र हल्लरचित 'वड्ढमाण कव्वु' के संबंध में पं० दीपचंद पंड्या का 'अपभ्रंश भाषा के दो ग्रंथ' नामक लेख द्रष्टव्य है, जो 'अनेकांत' के वर्ष ४ में प्रकाशित है।

४—यशकीर्तिरचित 'हरिवंश पुराणु' का रचना-काल सं० १५२० बतलाया गया है। पं० परमानंद जी के लेखानुसार सं० १५०० होना चाहिए। इनके द्वारा रचित 'चंद्रप्रभ चरिउ' का उल्लेख किया गया है। पं० परमानंद जी ने इसी नामवाले, पर इनसे भिन्न किसी यशकीर्ति द्वारा रचित होने की संभावना की है।[1]

५—नयनंदि के 'सुंदएण चरिउ' का परिचय श्री रामसिंह तोमर ने 'विश्व-भारती', खंड ४, अंक ४ में प्रकाशित किया है।

६—महाकवि स्वयंभू की कविता के उदाहरण श्री राहुल सांकृत्यायन ने 'हिंदी काव्य-धारा' में प्रकाशित किए हैं। इन्होंने कवि को संसार के प्रधान कवियों में स्थान दिया है।

पूर्वज्ञात ग्रंथकारों के उपलब्ध नवीन ग्रंथ

१—'कथा कोष' के रचयिता श्रीचंद्ररचित 'रत्नकरंड श्रावकाचार' की और उपलब्धि हुई है। यह स्वामी समंतभद्र की सुप्रसिद्ध 'रत्नकरंड' नामक गंभीर कृति का विस्तृत व्याख्यान मात्र है। कवि ने इस आचार-ग्रंथ की रचना करते हुए इसे २१ संधियों में विभाजित किया है। इसकी आनुमानिक छंद-संख्या ४४२८ बतलाई गई है। छंद पद्धडिया है। ग्रंथ में उदाहरण स्वरूप प्रसंगगत व्रतोपासक व्यक्तियों के कथानक भी दिए गए हैं। विषय स्पष्ट करने के लिये कुछ प्राचीन पद्य भी जहाँ तहाँ उद्धृत किए गए हैं।

ग्रंथ में हरिनंदि, मुनींद्र, समंतभद्र, अकलंक कुलभूषण, पादपूज्य (पूज्यपाद) विद्यानंदि, अनंतवीर्य, वरसेण, महामति वीरसेन, जिनसेन, विहगसेन, गुणभद्र, सोम-राज, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदंत, श्रीहर्ष और कालिदास नामक विद्वानों का उल्लेख किया गया है।

ग्रंथ की रचना विक्रम-संवत् ११२३ में कर्ण नरेंद्र के राज्य-काल में बालपुर या श्रीबालपुर में पूर्ण हुई थी[2]।

२—'सुकमाल चरित्र' के कर्त्ता श्रीधररचित 'वड्ढमाण कव्वु की प्रति दूणी' के भांडार में है[3]। इसमें कवि द्वारा रचित 'चंद्रप्रभ चरित' और 'शांतिनाथ चरित' का उल्लेख भी है, जो अनुपलब्ध हैं। यह ग्रंथ कवि ने साधु नेमिचंद्र की प्रेरणा से रचा है, जिनका वंश-परिचय भी ग्रंथ में पाया जाता है।

१—जैन-सिद्धांत-भास्कर, वर्ष ११, अंक २।

२—अनेकांत, वर्ष ७, पृष्ठ १०४।

३—वही, वर्ष ४, पृष्ठ ५२०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110730

खींचे हैं। पंचम अंश में एकाध स्थल पर कथा अस्वाभाविक रूप से रुकती जान पड़ती है। इसी अंश में अमृत ह्रद का विषमय जल पीकर युधिष्ठिर के अतिरिक्त सभी पांडव तथा कृष्णा मूर्छित होते हैं और इसी में मणिभद्र तथा युधिष्ठिर के माध्यम से कवि ने युधिष्ठिर द्वारा जीवन-दर्शन प्रस्तुत कराया है। युधिष्ठिर इतने व्याकुल थे कि मणिभद्र को शीघ्रातिशीघ्र अपनी संजीवनी का उपयोग करना चाहिए था। मगर वे युधिष्ठिर से तत्त्व-दर्शन प्राप्त करने के लिये रुकते से जान पड़ते हैं और इसे जानने के बाद औषध का प्रयोग करते हैं। सबों के मूर्च्छा से उठने के पश्चात् भी तत्त्व-मीमांसा की जा सकती थी। श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'अजित' की भाँति ही 'नकुल' में भी अधिकतर कथा संलाप के सहारे आगे बढ़ी है। कवि ने अनेक स्थलों पर बहुत ही रमणीय अभि-व्यक्तियाँ की हैं। हृदय में हर्ष को उठने की अभिव्यक्ति कवि ने इस प्रकार की है—

शून्य हृदय में हुआ हर्ष का मृदु सुस्पंदन,
निश्चल नभ को मिला हंसमाला का वंदन।

कुरुक्षेत्र—रचयिता-श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'। प्रकाशक-आर० सिंह, पटना। मूल्य ३॥)।

'कुरुक्षेत्र' जीवन और जगत् की शाश्वत (और सामयिक भी) समस्याओं के द्रष्टा कवि द्वारा लिखित वर्तमान युग की 'गीता' है। वैसे तो 'गीता' के अनेक लक्ष्य प्रतिपादित हो सकते हैं, परंतु प्रसंग को लेकर विचार करने पर उसका लक्ष्य न्याय्य और लोकोपकारक कर्म का प्रतिपादन ही है। 'कुरुक्षेत्र' का लक्ष्य भी यही कर्मवाद है। 'गीता' में युद्ध-क्षेत्र में श्री कृष्ण के संमुख अर्जुन को विरक्ति होती है और 'कुरुक्षेत्र' में युद्धोपरांत विजय प्राप्त कर लेने पर भीष्म पितामह के संमुख युधिष्ठिर को विराग उत्पन्न होता है। 'गीता' में श्री कृष्ण ने अर्जुन को निर्लिप्त हो कर्म करने का उपदेश दिया था और 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को 'कर्म संन्यासी' होने का उपदेश करते हैं। इस प्रकार दोनों ग्रंथों के लक्ष्य की एकता स्थापित होती है। मगर यहाँ इसका ध्यान रखना आवश्यक है कि 'गीता' दर्शन-ग्रंथ है और 'कुरुक्षेत्र' काव्य-ग्रंथ, यद्यपि इसमें बुद्धि हृदय की चेरी नहीं स्वामिनी है। इसी कारण इसमें विचार-धारा स्फीत रूप से प्रवा-हित हुई है, भावाश्रय हृदय के लिये रमणीय घाट जिसके तट पर यत्र तत्र दिखाई पड़ते हैं।

'कुरुक्षेत्र' में सात सर्ग हैं, जिनमें से छठे सर्ग में विषयांतर है, इसे स्वयं कवि ने भी स्वीकार किया है। यह सर्ग वर्तमान काल की संहार-लीला से प्रेरणा ग्रहण कर लिखा गया जान पड़ता है। यदि इस सर्ग को विषयांतर न समझा जाय तो अन्य सर्गों से इसका संबंध-सूत्र इस रूप में जोड़ा जा सकता है कि द्वापर की नर-संहार की वृत्ति इस युग में भी दूर नहीं हुई है। इस सर्ग का प्रमुख प्रतिपाद्य यह है कि नर-संहार का मूल कारण है बुद्धिवाद का चरम विकास और मानव द्वारा हृदय की उपेक्षा—

किंतु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर

श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत;
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत;

'कुरुक्षेत्र' का प्रसंग युद्ध के पश्चात् का है। प्रथम सर्ग में विजयी युधिष्ठिर के संमुख युद्ध की समस्या और विभीषिका आती है। द्वितीय सर्ग में युद्ध की विभीषिका से भीत धर्मराज इसके द्वारा प्राप्त विजय को पाप-रक्त से रँगी विजय समझते हैं। वे कहते हैं कि यदि मैं महाभारत का ऐसा परिणाम जानता तो कौरवों से तन-बल से नहीं मनोबल से युद्ध करता। यहाँ वर्तमान युग के गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट है। इस कुकर्म के पश्चात्ताप के लिये वे वन में जाना चाहते हैं। युधिष्ठिर को इस संघर्ष में पड़ा देख भीष्म ने कहा कि तुम व्यर्थ ही जल्पना में पड़ धर्माधर्म में फँसे हो। अभी तक मैं यह निर्णय नहीं कर पाया कि धर्म और अधर्म की सीमा-रेखा कहाँ है। कोई युद्ध करना नहीं चाहता मगर जब शत्रु ललकारता है तब तत्त्व-चिंतन छोड़ उससे भिड़ना ही पड़ता है। महाभारत में पाँच का ही स्वार्थ नहीं था, व्यक्तियों के संबंध से अन्य लोगों का भी स्वार्थ था। अपहर्ता के संमुख तप-त्याग दिखाना पाप है। उसका शिर काट लेना पुण्य है। व्यक्ति पक्ष से यदि महाभारत अनिवार्य न भी माना जाय तो समष्टि पक्ष से तो यह अनिवार्य ही था। मनोबल से तो मन के विकार जीते जाते हैं। शत्रु घेर लेते हैं तो तन-बल ही काम देता है। द्वितीय सर्ग में वस्तुतः अहिंसा (धर्मराज) और हिंसा (,भीष्म) की नोकझोंक है। इसमें तन-बल और मनोबल के प्रयोग की मीमांसा है। भीष्म अपने पक्ष को बहुत ही तार्किक ढंग से अपेक्षाकृत प्रबलतर प्रमाणित करते हैं।

तृतीय सर्ग में द्वितीय सर्ग की चिंतना का पल्लवन है। इसमें भीष्म कहते हैं कि शांति वे ही चाहते हैं जो परापहरण के उपभोग के लिये लालायित हैं। आगे वे कहते हैं कि इस प्रकार उपभोग के कारण जब अधिक लोग भूखों मरने लगते हैं तब क्रांति की सर्जना होती है। मनोबल से शांति की स्थापना की बात निर्बल करते हैं और सबल तन-बल से क्रांति करते हैं। ऐसी अन्य बातें भी इस सर्ग में कही गई हैं। भीष्म ने इसमें अनेक भेद-भावों से मुक्त शांति का समर्थन भी किया है। इस सर्ग में वर्तमान युग के शोषक-शोषित की चर्चा भी यत्र तत्र आई है। साम्यवाद की बात भी कही गई है—

शांति नहीं तब तक जब तक सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।

चतुर्थ सर्ग में महाभारत के कारणों का निर्देश है, संश्लिष्ट चित्रण नहीं। इस सर्ग में कुछ बातें ऐसी भी हैं जो पूर्व के सर्गों में कही जा चुकी हैं। भीष्म कहते हैं—'चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही है।' उन्होंने यह भी कहा कि यह युद्ध दो घरों का युद्ध नहीं वरन् भारतवर्ष के भूपालों के मन में स्थित विद्वेष के कारण घटित युद्ध था। राजसूय भी इसका एक कारण था। व्यास ने किसी ऐसी दुर्घटना के लिये भविष्यद्वाणी भी की थी। द्रौपदी का चीर-हरण भी इसका कारण है। इसी प्रकार महाभारत के अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारणों का उल्लेख भी भीष्म ने किया है। कारणों का बौद्धिक विवेचन ही है, संश्लिष्ट और काव्यात्मक चित्रण नहीं। अंत में भीष्म ने कहा है कि यदि मैं न्याय का पक्ष लेता तो महाभारत न होता—मैंने ही सुयोधन का पक्ष ग्रहण किया। उन्होंने यह भी कहा है कि ऐसी परिस्थिति में मैंने तन कौरवों को और मन पांडवों को दिया था।

पंचम सर्ग में युद्ध के महाविनाश को देखकर युधिष्ठिर का पश्चात्ताप है।

सप्तम सर्ग में कर्मवाद की पूरी मीमांसा है। सर्ग के आरंभ में ही मानव की वंदना करता हुआ कवि कहता है—

हार मान हो गई न जिसकी किरण तिमिर की दासी;
न्योछावर उस एक पुरुष पर कोटि-कोटि संन्यासी।

भीष्म कहते हैं कि सारा सुख प्रकृति अथवा पृथ्वी पर फैला है। कर्म-पथ का अनुगामी ही उन्हें प्राप्त करता है। भाग्यवाद पर कर्मवाद की विजय होती है। संक्षेप में मानव-समाज का विकास भी इस सर्ग में दिया गया है, जिसमें दिखलाया गया है कि कैसे कैसे मनुष्य राजा का अभिलाषी हुआ और कैसे फिर राजा दोहन में निरत। भीष्म ने धर्मराज से कहा कि अपने सुख को नहीं लोक के सुख की दृष्टि से महाभारत के परिणाम पर विचार करो। निर्लिप्त कर्म की मीमांसा कर भीष्म युधिष्ठिर को कर्मठ संन्यासी बनने का आदेश देते हैं। द्वितीय सर्ग में धर्मराज विजन में जाना चाहते हैं और अंतिम सर्ग में भीष्म उन्हें निर्लिप्त रूप से कर्म संलग्न होने का आदेश करते हैं। इस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' निवृत्ति पर निर्लिप्त प्रवृत्ति की विजय का प्रतीक है।

'कुरुक्षेत्र' की रचना तब हुई जब सारा संसार युद्ध लिप्त था, अथवा किन्हीं रूपों में आज भी है। ऐसी अवस्था में इसमें युद्धपरक प्रायः सभी तत्त्वों की मीमांसा एक प्राचीन प्रसंग के सहारे कवि ने की है। युद्ध की समस्या, उसका मूल कारण, उसकी विभीषिका, उससे प्रवृत्ति-निवृत्ति, उसके पक्षापक्ष-ग्रहण आदि सभी तत्त्वों की विचारणा प्रसंगतः इसमें है। इसके अतिरिक्त युग की अन्य विचार-धारा वा प्रवाह भी इसमें मिलता है। जैसे, हिंसा, अहिंसा, साम्यवाद, गांधीवाद आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कुरुक्षेत्र' वर्तमान युग के दर्पण-सा हमारे संमुख खड़ा है।

'कुरुक्षेत्र' की पीठिका तर्क की है और इस पीठिका पर जो निर्माण हुआ है वह भी तर्क-संकुल है। काव्य रमणीय अर्थों का प्रतिपादक होता है, उसका लक्षण यही है, प्राधान्य भी इसी का होना चाहिए। 'कुरुक्षेत्र' में रमणीय अर्थों का प्रतिपादन अथवा निर्माण अत्यल्प है। कवि ने जो चिंतनाएँ सारी पुस्तक में दी हैं उनका निचोड़ अच्छी तरह अधिक से अधिक दो-तीन सर्गों में वह दे सकता था और शेष सर्गों में नर-जगत् तथा नरेतर जगत् को लेकर वस्तु-व्यंजना कर रमणीय अर्थ का प्रतिपादन—रमणीय चित्रों का चित्रण—कर सकता था। रचना का आरंभ कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात् होता है, अतः रमणीय अर्थों के चित्र प्रस्तुत करने के लिये स्मृति आदि का सहारा ले कुरुक्षेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के युद्ध के मूल तथा विस्तार में घटित सारे सक्रिय कार्य-व्यापार प्रस्तुत किए जा सकते थे। इस प्रकार संभवतः रचना में बुद्धिवाद की पीठिका का निवारण अथवा उसकी कमी हो जाती। अस्तु। परंतु कवि ने जो तर्क प्रस्तुत किए हैं उनके कौशल की सराहना किए बिना मन नहीं मानता। निश्चय कवि के इस कौशल पर चित्त चमत्कृत हो जाता है।

'कुरुक्षेत्र' के प्रबंधत्व की बात भी सामने आती है। प्रबंध का संबंध कथा से होता है। जहाँ तक कथा का संबंध है, वह 'कुरुक्षेत्र' में नहीं है। इसमें तो युद्ध के कारणों तथा उसको विनाश के प्रति पश्चात्ताप तथा ऐसी अन्य बातों को लेकर विचारणा की गई है, जो बौद्धिक है, भावात्मक नहीं। ऐसी अवस्था में कथा की नहीं विचारों की लड़ी सामने आती है। यथास्थल घटनाओं का निर्देश मात्र है, उनका वर्णन नहीं। विचारों के संग्रह और कथा के त्याग के कारण प्रत्येक सर्ग का अस्तित्व भी अलग अलग जान पड़ता है।

'कुरुक्षेत्र' में काव्य-तत्त्व की कमी है, इसका निर्देश मैंने किया है, मगर जिस तत्त्व का प्राधान्य है उसके लिये कवि की सराहना किए बिना नहीं रहा जा सकता। कवि को अपनी रचना में जो कहना था उसके लिये पीठिका का निर्माण भी बहुत ही व्यापक और विराट् है। यहाँ मेरा तात्पर्य 'कुरुक्षेत्र' के प्रथम सर्ग से है, जिसमें कवि ने युद्ध की समस्या को बहुत मार्मिक और मौलिक पक्ष से उठाया है, जिसका हल रचना पढ़कर पाठक स्वयं भी निकाल सकता है।

श्री दिनकर प्रधानतः वीररस के कवि हैं, अतः 'कुरुक्षेत्र' में ओज सर्वत्र व्याप्त है। जहाँ काव्यात्मक स्थल हैं वहाँ वे मार्मिक हैं। ऐसे स्थलों पर कवि ने अपनी बात को बाँकपन के साथ कहा है। जैसे—

रश्मि-देश की राह यहाँ तम से होकर जाती है,
उषा रोज रजनी के सिर पर चढ़ी हुई आती है।
और कौन है, पड़ा नहीं जो कभी पाप-कारा में?
किसके वसन नहीं भींगे वैतरणी की धारा में॥

श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'अजित' तथा श्री सियारामशरण गुप्त के 'नकुल' की भाँति 'कुरुक्षेत्र' की रचना भी संलाप-शैली में हुई है।

अनोखी कहानियाँ—लेखक-श्री मक्खनलाल दम्माणी। प्रकाशक-चाँद प्रिंटिंग प्रेस, किंग एडवर्ड मेमोरियल रोड, बीकानेर। मूल्य ।=)।

प्रस्तुत पुस्तक में बालोपयोगी सात ऐसी कहानियाँ संगृहीत हैं जिनका संबंध जादूगरी, पशुओं, पक्षियों, राजाओं, राजकुमारों, राजकुमारियों, दैत्यों आदि से है। ये मनोरंजक और आश्चर्यजनक हैं। बालकों का मन बहलाव इनसे अवश्य होगा। इनकी रचना का लक्ष्य भी यही है।

पुस्तक की भाषा में कुछ दोष रह गए हैं, जिनका सुधार हो जाना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालकों के संमुख दुष्ट भाषा का रहना ठीक भी नहीं है। **'तुम्हारे लड़के को मुझे दे दो,'** '......**सौंप दिया,**' '**खेंचकर,**' '**सोना देओ**', 'धोबी से विदा होकर अपने शहर की तरफ **रवाने हो गया**' में मोटे अक्षरों में लिखे शब्द क्रमशः इस रूप में होने चाहिए— 'अपने', 'सौंप', 'खींचकर', 'दो', 'रवाना हो गया'। आशा है लेखक की दृष्टि इनपर जायगी और इस प्रकार के दोष सुधर जायँगे।

कवि और छवि—लेखक–श्री बालकृष्ण राव। प्रकाशक–इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य २)।

'कवि और छवि' श्री बालकृष्ण राव का द्वितीय काव्य-संग्रह है। इसके पूर्व इनका एक काव्य-संग्रह 'आभास' नाम से सन् १९३६ में प्रकाशित हो चुका है। हिंदी-साहित्य के छायावाद-रहस्यवाद-युग की गति-विधि से जो परिचित हैं उनसे यह अप्रकट नहीं है कि श्री बालकृष्ण राव उस युग के प्रिय तथा प्रसिद्ध कवि हैं। इनके प्रगीत मुक्तकों (लीरिक्स) की अभिव्यंजना शैली, रहस्यवादिता और गीतिमत्ता से कोई अपरिचित नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक की रचनाएँ कवि के काव्य-जीवन की प्रौढ़ावस्था की है, अतः इनमें अपेक्षाकृत चिंतन और अनुभूति की मात्रा अधिक है। इसमें सन् '३५ से सन् '४६ तक की रचनाएँ संगृहीत हैं, इस कारण कुछ 'आभास'-कालीन रचनाओं की कोटि की भी हैं, परंतु ऐसी रचनाएँ उपेक्षणीय नहीं हैं। 'कवि और छवि' में कवि ने अपनी अनुभूति-शीलता के आधार पर जगत् और जीवन की चिंतनाएँ की हैं। इन चिंतनाओं के लिये उसने प्राकृतिक प्रतीकों का भी आश्रय लिया है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि 'कवि और छवि' में चिंतनशील रचनाओं का ही आधिक्य है। इन चिंतनशील रचनाओं के ही अंतर्गत वैसी रचनाएँ भी हैं जो दार्शनिक वा रहस्यवादी कोटि की हैं।

'कवि और छवि' की रचनाएँ छायावाद-रहस्यावाद-युग की विशेषताओं से संपन्न हैं। रचनाओं के विषय भी प्रायः उक्त युग के ही हैं। आशा है अब कवि की दृष्टि आज के युग पर भी जायगी और वह अपने प्रौढ़ कवित्व द्वारा वर्तमान विषयों को भी अमरता प्रदान करेगा। कवि की दृष्टि अब अपने से हटकर लोक पर भी जानी चाहिए।

शिवनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचनिका

संयुक्त प्रांतीय राजभाषा हिंदी

[संयुक्त प्रांत की सरकार ने हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने की ११ अक्टूबर सन् '४७ ई० को जो घोषणा की है उसका आवश्यक अंश नीचे दिया जाता है।—सं०]

युक्त प्रांतीय सरकार ने पहली वार हिंदी में अपनी आज्ञा जारी की है। उसके द्वारा प्रांत की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी घोषित कर दी गई है। इसमें कहा गया है कि अब से सब सरकारी काम देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली हिंदी में होगा।

संयुक्त प्रांतीय कौंसिल के पिछले अधिवेशन में स्वीकृत निम्नलिखित प्रस्ताव को सरकार ने मान लिया था—

"यह कौंसिल सिफारिश करती है कि हिंदी भाषा तथा देवनागरी लिपि को इस प्रांत की राजभाषा तथा लिपि स्वीकार किया जाय।"

इस प्रस्ताव को कार्य रूप देने के उद्देश्य से सरकार ने उपर्युक्त आदेश जारी किया है।

जब तक उपर्युक्त निश्चय को वास्तविक और पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के लिये व्यापक प्रबंध नहीं कर लिया जाता तब तक हिंदी न जाननेवाले विचारपति तथा अन्य कर्मचारी, जब तक दूसरी आज्ञा न निकले तब तक, उसी तरह अदालती कार्रवाइयों को लिपिबद्ध कर सकते हैं जिस प्रकार वे अब तक वर्तमान कानून और नियमों के अनुसार करते आए हैं। हिंदी भाषा के प्रयोग में, संप्रति, इस बात की अनुमति रहेगी कि अँगरेजी के पारिभाषिक शब्द नागरी या रोमन लिपि में लिखे जायँ।

यह स्पष्ट कर दिया गया है कि हिंदी भाषा से अभिप्राय उस हिंदी भाषा से है जो संयुक्त प्रांत की जनता की भाषा है और जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।

सरकारी कर्मचारियों के लिये विभागों की परीक्षाओं के नियमों में हिंदी को अब एक अनिवार्य विषय बनाने की कार्रवाई सरकार करनेवाली है।

अदालतों की भाषा

प्रांतीय सरकार ने आवश्यक विज्ञप्तियों द्वारा हिंदी को इस प्रांत की दीवानी और फौजदारी अदालतों की भाषा घोषित कर दिया है। टेनेंसी ऐक्ट की कार्रवाइयों में भी हिंदी का ही प्रयोग होगा। लैंड रेवेन्यू ऐक्ट के अधीन कार्रवाइयाँ हिंदी में कराने के लिये भी कार्रवाई की जा रही है।

सरकार का आदेश है कि

(देखिए आवरण का तीसरा पृष्ठ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त प्रांत की राजभाषा हिंदी

हर्ष का विषय है कि संयुक्त प्रांतीय सरकार ने प्रांत की जनता की भाषागत प्रवृत्ति को पहचानकर हिंदी को प्रांत की राजभाषा घोषित कर दिया है। हिंदी को जो पद मिलना चाहिए सरकार ने उसे उसी पर प्रतिष्ठित किया है। राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव में न आ प्रांत की राजभाषा हिंदी घोषित कर सरकार ने जो दृढ़ता दिखाई है, वह स्तुत्य तथा अन्य हिंदी प्रांतों के लिये अनुकरणीय है। हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकृत कर लेने के लिये प्रस्ताव करनेवाले बाबू परमानंद सिंह के प्रति भी हम कृतज्ञ हैं।

यहाँ यह निवेदन कर देना भी आवश्यक है कि संयुक्त प्रांतीय सरकार के कर्तव्य की इति हिंदी को प्रांत की राजभाषा घोषित कर देने भर से नहीं हो जाती। हिंदी को भारतवर्ष की राजभाषा स्वीकार कराने में सहायक होने का उसका कर्तव्य भी कम नहीं है। विद्वज्जनों को यह प्रकट है कि युगों से संयुक्त प्रांत (मध्यदेश) की जन भाषा ही सारे भारतवर्ष की भाषा होती रही है और हिंदी हो इस प्रांत की लोक-भाषा है। ऐसी दशा में इस प्रांत की करकार तथा जनता का यह कर्तव्य है कि वह अपने प्रांत की भाषा की परंपरा को अखंड रखने का पूरा प्रयत्न करे। हिंदी तो स्वदेश की राष्ट्रभाषा है ही, इसे राजभाषा के रूप में हमें प्रतिष्ठित करना तथा कराना है; मगर राजनीतिक परिस्थिति के वशीभूत हो कुछ लोग हिंदी के प्रसार, अधिकार आदि से दृष्टि हटा-कर उसके प्रति अन्याय करना चाहते हैं। हमें सब प्रकार से इस अन्याय का सामना कर राष्ट्रभाषा हिंदी को भारत की राजभाषा स्वीकृत करानी है। इसके लिये संयुक्त प्रांतीय सरकार, अन्य प्रांतों की सरकारों, संयुक्त प्रांत की जनता तथा सारे देश की जनता की सहायता अपे-क्षित है। आशा है इसमें सबका सहयोग बिना किसी सांप्रदायिक भेद-भाव के प्राप्त होगा। हिंदी की परंपरा भेदभाव से शून्य रही है और उसे ऐसा ही रहना चाहिए, पर न्याय्य अधिकार के लिये यदि सांप्रदायिकता या कोई राजकीय मनोवृत्ति आड़े आए तो हमें उसका साहसपूर्वक और सचाई से सामना भी करना चाहिए।

स्वर्गीय श्री कामताप्रसाद गुरु

श्री कामताप्रसाद गुरु द्विवेदी-युग के प्रमुख और प्रसिद्ध साहित्यकारों में से एक थे। यद्यपि आपने आरंभ में कविताएँ आदि भी लिखी हैं तथापि भाषा और व्याक-रण पर आपकी विशेष दृष्टि अपने साहित्यिक-जीवन के उदय-काल से ही थी। इन विषयों से संबद्ध आपके कई लेख 'सरस्वती' के प्रारंभिक अंकों में प्रकाशित हुए हैं। 'हिंदी-व्याकरण' जैसा हिंदी-भाषा का बृहत् तथा प्रामाणिक व्याकरण लिखना ऐसी रुचिवाले व्यक्ति के लिये ही संभव था। 'हिंदी-व्याकरण' के निर्माण के पश्चात् गुरु जी हिंदी के प्रमुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैयाकरण के रूप में प्रतिष्ठित हुए और उनकी यह प्रतिष्ठा आजीवन अद्वितीय बनी रही। उनके दिवंगत होने पर उन जैसा हिंदी का कोई दूसरा वैयाकरण नहीं दृष्टिगत होता। उनका 'हिंदी-व्याकरण' उनकी अमर कीर्ति के रूप में सदैव प्रतिष्ठित रहेगा, इसमें संदेह नहीं। इसे स्वीकार करने में संभवतः किसी को आपत्ति न होगी कि 'हिंदी-व्याकरण' हिंदी में अपने ढंग का पहला शब्दानुशासन है, और आज भी इसके समकक्ष दूसरा व्याकरण नहीं रखा जा सकता। आधुनिक युग में व्याकरण का अध्ययन-मनन जिस तुलनात्मक पद्धति से चल रहा था उसके अनुरूप ही हिंदी-भाषा का व्याकरण निर्मित करना उपयोगी था, अतः गुरु जी ने अँगरेजी की इसी तुलनात्मक पद्धति के आश्रय से कार्य किया। इसे निर्माण करते समय बंगाली, मराठी, गुजराती आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं की व्याकरण-पद्धति की भी तुलनात्मक मीमांसा पर गुरु जी की दृष्टि रही है। इस प्रकार समग्रतः पूर्ण 'हिंदी-व्याकरण' का निर्माण गुरु जी ने किया। व्याकरण के क्षेत्र में वे गुरु ही थे।

'सभा' पर गुरु जी की कृपा बराबर बनी रही और उनका ऐसा 'हिंदी-व्याकरण' प्रकाशित करने का सौभाग्य 'सभा' को ही प्राप्त है।

अमरकीर्ति गुरु जी के शोकसंतप्त परिवार के साथ हम समवेदना प्रकट करते हैं।

श्री सीताराम प्रेस, जालिपादेवी काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा की प्रगति

[वैशाख से आश्विन २००४ तक]

वार्षिक अधिवेशन

सभा का चौवनवाँ वार्षिक अधिवेशन शनिवार २० वैशाख, संवत् २००४ को हुआ जिसमें संवत् २००४ के लिये सभा के निम्नलिखित पदाधिकारी और प्रबंध-समिति के सदस्य चुने गए—

पदाधिकारी

सभापति	...	श्री मैथिलीशरण गुप्त
उपसभापति (१)	...	श्री संपूर्णानंद
उपसभापति (२)	...	श्री श्रीनिवास
कार्याध्यक्ष	...	श्री रामनारायण मिश्र
प्रधान-मंत्री	...	श्री व्रजरत्नदास
साहित्य-मंत्री	...	श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र
अर्थ-मंत्री	...	श्री गोपाललाल खन्ना
प्रकाशन मंत्री	...	श्री अशोक जी
प्रचार-मंत्री	...	श्री सहदेव सिंह
संपत्ति-निरीक्षक	...	श्री बाँकेबिहारीलाल
पुस्तकालय-निरीक्षक	...	श्री रामस्वरूप
आय-व्यय-निरीक्षक	...	श्री जीवनदास

प्रबंध समिति के सदस्य

संवत् २००४ से २००६ तक—सर्वश्री रामचंद्र वर्मा, काशी। डा० फूलदेवसहाय वर्मा, काशी। राय कृष्णदास, काशी। ठाकुर शिवकुमार सिंह, काशी। मनोरमा सैटिन, काशी। वैजनाथ वाघ्रे, संयुक्तप्रांत। डा० बाबूराम सक्सेना, सं० प्रांत। मदनमोहन सेठ, राज्य। मोतीलाल मेनारिया, राज्य। स्वामी हरनामदास उदासीन, सिंध। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, दिल्ली। सर्वजीत, असम। जी० सच्चिदानद, मैसूर।

संवत् २००४ और २००५ के लिये—सर्वश्री डा० राजेंद्रनारायण शर्मा, काशी। देवीनारायण ऐडवोकेट, काशी। केशवप्रसाद मिश्र, काशी। कृष्णानंद, काशी। भगवतीशरण सिंह, काशी। भगीरथ कानोडिया, बंगाल। नीतिश्वरप्रसाद सिंह, उत्कल। श्रीनारायण चतुर्वेदी, सं० प्रांत। डा० कैलाशनाथ भटनागर, पंजाब। गोपालचंद्र सिंह, सं० प्रांत। विद्याधर शास्त्री, राज्य। शिवपूजन सहाय, बिहार। डा० ओम्प्रकाश, ब्रह्मदेश।

संवत् २००४ के लिये—सर्वश्री रामऋषि शुक्ल, काशी। कृष्णदेवप्रसाद गौड़, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाकुरदास ऐडवोकेट, काशी। परमेश्वरीलाल गुप्त, काशी। मुरारिलाल केडिया, काशी। घनश्यामदास पोद्दार, बंबई। ब्योहार राजेंद्रसिंह. मध्य प्रांत। सरदार माधवराव विनायक राव किवे, राज्य। डा० धीरेंद्र वर्मा, सं० प्रांत। विश्वेश्वरनाथ वाग्रे, राज्य। शांतिप्रिय आत्माराम, राज्य। ना० नागप्पा, सिंहल। सत्यनारायण मद्रास।

श्री अशोक जी के त्यागपत्र दे देने पर सभा के १० श्रावण के साधारण अधिवेशन में श्री रामचंद्र वर्मा प्रकाशन-मंत्री तथा श्री रामचंद्र वर्मा के स्थान पर श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे प्रबंध-समिति के सदस्य चुने गए।

उक्त वार्षिक अधिवेशन में सभा की नियमावली में निम्नलिखित संशोधन स्वीकार किए गए—

(१) नियम २० ग में '५०' के स्थान पर '६०' किया जाय।

(२) नियम २१ अपने निम्नलिखित पूर्व रूप में किया जाय—

"२१–सब श्रेणी के सभासदों को उनके सभासद होने के वर्षारंभ से सभा की मुख-पत्रिका बिना मूल्य दी जायगी। ये सभासद पत्रिका के पुराने अंक और सभा द्वारा प्रकाशित अन्य पत्रिका तथा पुस्तकों की एक एक प्रति ¾ मूल्य पर ले सकते हैं। परंतु प्रबंध-समिति को अधिकार होगा कि साधारण सभा की अनुमति से किसी विशेष पुस्तक को इस नियम के बाहर रखे।"

(३) नियम २२ के अंतर्गत सदस्यता के आवेदनपत्र में से 'प्रचारार्थ' और 'उद्योग' के बीच का 'निरंतर' शब्द पृथक् कर दिया जाय।

(४) नियम ३४ में 'दो उपसभापति' के उपरांत 'यथावश्यकता एक कार्याध्यक्ष' जोड़ा जाय।

(५) नियम ३५ में 'कम से कम एक का' के उपरांत 'एवं कार्याध्यक्ष का' जोड़ा जाय।

(६) नियम ३६ के अंत में यह वाक्य बढ़ाया जाय—"परंतु कार्याध्यक्ष के संबंध में यह नियम लागू न होगा।"

(७) नियम ४२ की नियम-संख्या ४३ की जाय तथा आगे की नियम-संख्याएँ इसी क्रम से ठीक कर ली जायँ एवं नवीन नियम ४२ इस प्रकार रखा जाय—

"४२. कार्याध्यक्ष के कर्त्तव्य तथा अधिकार—

क. सभा के प्रत्येक विभाग में अपनी मंत्रणा और सहयोग से विशेष जीवन-उत्साह प्रदान करना।

ख. केंद्रीय, प्रांतीय तथा राज्यों के विद्यामंत्रियों से संपर्क स्थापित करके सभा के उद्देश्यों की पूर्ति करना।

ग. भारत के प्रत्येक भाग में तथा बृहत् भारत में भारतीय संस्कृति, हिंदी-साहित्य और देवनागरी लिपि के विशेष प्रचार का कार्य करना।

घ. विदेशों में भारतीय संस्कृति की खोज और रक्षा का प्रयत्न करना।

ङ. सभा की शाखाओं का प्रसार और निरीक्षण करना।

च. सभा के लिये धन-संपत्ति संग्रह करना।"

(८) नियम ५० (परिवर्तित नियम-सख्या) में "दो उपसभापति" के उपरांत 'यथावश्यकता एक कार्याध्यक्ष' जोड़ा जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) नियम ५० में (घ) विभागके उपरांत (ङ) विभाग इस प्रकार जोड़ा जाय—

"ङ—विदेशों के ... ... २"

तथा इसके उपरांत समिति के सभासदों का योग '३९' के बदले "४१" किया जाय।

(१०) नियम ५४ की नियम-संख्या ५४ (क) की जाय तथा इसके उपरांत (ख) विभाग इस प्रकार जोड़ा जाय—

"ख—प्रबंध-समिति के विदेशस्थ सभासदों का वर्ष में कम-से-कम एक बार समिति के विचाराधीन कार्यों के संबंध में संमति भेजना आवश्यक होगा।"

(११) नियम ५६ में 'उपसभापति' के अनंतर 'कार्याध्यक्ष' जोड़ा जाय।

उक्त वार्षिक अधिवेशन के दिन निम्नलिखित साहित्यकारों के तैल-चित्रों का उद्घाटन हुआ—

१—श्री बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन'
२—श्री प्रतापनारायण मिश्र
३—श्री श्रीधर पाठक
४—श्री रामकृष्ण वर्मा
५—श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु'
६—श्री देवकीनंदन खत्री
७—श्री किशोरीलाल गोस्वामी
८—सर जार्ज ग्रियर्सन
९—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

पुरस्कार और पदक

निम्नलिखित पुरस्कार और पदक संमुखांकित रचनाओं के लेखकों को अर्पित किए गए—

	पुरस्कार-पदक	पुस्तक	लेखक
क—	रत्नाकर पुरस्कार तथा राधाकृष्णदास पदक	घनानंद और आनंदघन	श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र
ख—	बटुकप्रसाद पुरस्कार तथा सुधाकर पदक	शेखर : एक जीवनी भाग २	श्री अज्ञेय
ग—	द्विवेदी-स्वर्णपदक	जौहर	श्री श्यामनारायण पांडेय

भारत सरकार ने सन् १८६५ वाले ३॥ प्रतिशत सूद के जो कागज चालू किए थे वे गत वर्ष बंद कर दिए गए और उनके बदले ३ प्रतिशत वाले कागज चालू किए। पदक-पुरस्कारों की स्थायी-निधियाँ इन्हीं ३॥ प्रतिशत सूदवाले कागजों के रूप में थीं, फलतः उनके परिवर्तित हो जाने पर ब्याज की आय कम हो गई। फिर भी और किसी पुरस्कार पदक के द्रव्य में कमी नहीं करनी पड़ी, केवल माधवीदेवी पुरस्कार, जो संवत् २००५ से प्रति तीसरे वर्ष दिया जानेवाला था, अब संवत् २००६ से प्रति चौथे वर्ष दिया जाया करेगा।

पुस्तकालय

गत वर्ष पुस्तकालय के साधारण सहायकों की संख्या ५२० थी जो इस वर्ष ५७८ है। इस वर्ष ४ नए आजीवन सहायक हुए। आजीवन सहायकों की समस्त संख्या अब २८ है। इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा ३२ पत्र-पत्रिकाएँ पुस्तकालय में अधिक आने लगी हैं। पर्वों तथा आकस्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुट्टियों को छोड़कर पुस्तकालय १५१ दिन तथा वाचनालय १६२ दिन खुला रहा जिसमें पाठकों की दैनिक संख्या लगभग २५० थी एवं प्रतिदिन प्रायः १५० पुस्तकों का आदान-प्रदान होता रहा। इस अवधि में २०७ पुस्तकें भेंट में, ३० पुस्तकें समीक्षार्थ तथा १६६ पुस्तकें परिवर्तन में तथा क्रय करके आईं। ३१ हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त हुए जो विशेष महत्त्व के हैं। जिन सज्जनों तथा संस्थाओं ने पुस्तकों द्वारा पुस्तकालय की सहायता की उनमें लखनऊ का विद्यामंदिर प्रेस और बाँकीपुर का ग्रंथमाला कार्यालय विशेष धन्यवादार्ह है। प्रांतीय सरकार ने प्रतिवर्ष की स्थायी सहायता के अतिरिक्त १०००) की विशेष सहायता इस अवधि में पुस्तकालय को दी।

इस वर्ष द्विवेदी-संग्रह की तथा हस्तलिखित पुस्तकों की सूची प्रेस के लिये तैयार कर ली गई। सत्यज्ञान पुस्तकालय की सूची का पहला खंड छप गया है और दूसरा प्रेस में है। सत्यज्ञान पुस्तकालय में पुस्तकों की कुल संख्या अब १३२५ है।

संकेतलिपि-विद्यालय

८ आश्विन को माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री जी ने सभा के संकेतलिपि-विद्यालय का उद्घाटन किया। विद्यालय का कार्य तभी से पूरे वेग से चल रहा है और इस समय शिक्षार्थियों की संख्या ६० से ऊपर हो चुकी है।

गोष्ठी, व्याख्यान, आदि

इस अवधि में सभा की साहित्यगोष्ठी तथा 'प्रसाद'-व्याख्यान-माला के अंतर्गत जो आयोजन हुए तथा सभा की ओर से जिन विशिष्ट दर्शकों और अतिथियों का स्वागत किया गया उनका कालानुक्रम से ब्योरा निम्नलिखित है।

[१] ८ श्रावण को तुलसी-जयंती मनाई गई।
[२] १६ श्रावण को हिंदी-दिवस मनाया गया।
[३] ३ आश्विन को भारतेंदु-जयंती मनाई गई।
[४] १६ कार्तिक को माननीया श्रीमती सरोजिनी नायडू का स्वागत-आयोजन हुआ।
[५] १७ कार्तिक को पी० ई० एन० के काशी-संमेलन के प्रतिनिधियों का स्वागत आयोजन।
[६] १८ कार्तिक को 'भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी हो' के संबंध में श्री वियोगी हरि का व्याख्यान।
[७] ६ मार्गशीर्ष को पं० मधुसूदन शास्त्री का 'काव्य में रस का स्थान' विषय पर व्याख्यान।

प्रकाशन

इस वर्ष निम्नलिखित नवीन ग्रंथ प्रकाशित हुए—

[१] भारतीय वास्तु कला, ले० श्री परमेश्वरीलाल गुप्त।
[२] भाषा-विज्ञान-सार, ले० श्री राममूर्ति मेहरोत्रा।
[३] हिंदी का सरल भाषा-विज्ञान, ले० श्री गोपाललाल खन्ना।
[४] हिंदी की हिमायत क्यों ? ले० श्री चंद्रबली पांडेय।
[५] भट्ट-नाटकावली (स्व० श्री बालकृष्ण भट्ट के तीन नाटक), संपादक श्री धनंजय भट्ट।
[६] भट्ट-निबंधमाला (स्व० श्री बालकृष्ण भट्ट के निबंधों का संग्रह) संग्रहकर्त्ता और संपादक श्री धनंजय भट्ट।
[७] हिंदी वालो, सावधान !, ले० श्री रविशंकर शुक्ल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८] हिंदुस्तानी का रहस्य, चंद्रबली पांडेय।
[९] नैशनल लैंग्वेज फॉर इंडिया (अंगरेजी में), ले० श्री चंद्रबली पांडेय।

निम्नलिखित पुस्तकों के नवीन संस्करण हुए—
[१०] प्रथम हिंदी-व्याकरण
[११] संक्षिप्त हिंदी-व्याकरण
[१२] हिंदी-निबंधमाला, भाग १
[१३] तुलसी-ग्रंथावली, भाग २
[१४] हिंदी पद्य-पारिजात, भाग २
[१५] मध्य हिंदी-व्याकरण

निम्नलिखित पुस्तकें छप रही हैं—
[१६] कबीर-ग्रंथावली
[१७] रामचरितमानस
[१८] हिंदी-साहित्य का इतिहास
[१९] रस-मीमांसा
[२०] लंका-दहन
[२१] मुगल-दरबार, भाग ३
[२२] हिंदुस्थानी शिष्टाचार
[२३] बालोपदेश
[२४] खाद-विज्ञान
[२५] गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना
[२६] जीवों की कहानी
[२७] हरद्वार

राजकीय कोश के सामग्री-संग्रह और संपादन का जो कार्य पिछले तीन वर्षों से हो रहा है उसे शीघ्र पूरा करना आवश्यक हो गया है, क्योंकि संयुक्त प्रांत की सरकार ने हिंदी और नागरी को राज-भाषा और राजलिपि स्वीकार करके सभी विभागों में इसके शीघ्र प्रयोग की आज्ञा दे दी है। एतदर्थ उचित व्यवस्था की जा रही है।

हिंदी-शब्दसागर के संशोधन के लिये एक सहायक की नियुक्ति की गई है और यह कार्य भी यथोचित गति से आगे बढ़ रहा है।

हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज

इस वर्ष सभा के दोनों अन्वेषकों—श्री दौलतराम जुयाल और श्री कृष्णकुमार बाजपेयी—ने सुलतानपुर ज़िले में तीन मास (वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़) खोज का काम किया। जिले का थोड़ा सा पूर्वी भाग छोड़ शेष कार्य समाप्त हो गया है। श्रावण से अन्वेषकों द्वारा संवत् २००२ से लेकर संवत् २००३ तक की खोज की त्रैवार्षिक विवरणिका प्रस्तुत करने का कार्य हो रहा है जो अब समाप्ति पर है।

वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ इन तीन मासों में १०५ ग्रंथों के विवरण लिए गए हैं। इनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से १७ ग्रंथों के रचयिता अज्ञात हैं और शेष ८८ ग्रंथ ७१ रचियताओं द्वारा निर्मित हैं। इस कार्य-काल में जो नए और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्राप्त हुए हैं उनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

संख्या	ग्रंथों के नाम	रचयिताओं के नाम	रचनाकाल	लिपिकाल	विषय
१	बानी और विरहसत	सिध्यादास बाबा	सं० १८१०वि०	१९८०	भक्ति
२	राम-शब्दावली	बाबा झामदास	१८३१	१८३१	,,
३	शब्द	,, केसौदास	×	×	,,
४	शब्द	,, रामप्रसाद	×	×	,,
५	शब्दावली	,, रामसुधिकरनदास	×	×	,,
६	माधवरत्नज्ञान	नवलदास	१८३८	१८५२	,,
७	रामाश्वमेध	हरिसहाय गिरि	१९००	×	रामाश्वमेध
८	अलंकार-मुक्तावली	धीर	×	१८५२	अलंकार
९	कृष्णविलास	शिवराज महापात्र	×	×	शृंगार
१०	हरिविलासाख्य	हरिविलास	×	×	काव्य
११	कविकुलतिलकप्रकाश	महीपति 'महीप'	१७६६	×	रस, अलंकार
१२	दधिलीला	करताराम	×	×	कृष्णलीला
१३	भाषा भक्तचंद्रिका	विश्वनाथसिंह	१८९४	१९०५	काव्य
१४	दुर्गाशतक	विष्णुदत्त महापात्र	१९१७	१९१७	काव्य
१५	रामपंचाध्यायी	कृष्णदास कायस्थ	×	×	काव्य
१६	यूसुफ-जुलेखा	शेखनिसार	१८४७	१९५६	प्रेमकाव्य
१७	प्रेमलीला	मिरजा मुहम्मदजान	×	१९०६	प्रेमकाव्य
१८	अद्भुत रामायण	गोकुल कायस्थ	१९१२	१९३३	काव्य
१९	नीतिरत्नाकर	दिग्विजयसिंह	१९२१	×	नीति
२०	अनुरागविवर्द्धक रामायण	वनदास	×	१९२२	शृंगार

सत्यज्ञान निकेतन

निकेतन के अंतर्गत एक हिंदी-विद्या-मंदिर की स्थापना की गई है जिसका उद्घाटन श्री डा० धीरेंद्र वर्मा के करकमलों से १२ आषाढ़ को हुआ। इसमें अधिकांश पंजाबी शरणार्थियों के बालक शिक्षा प्राप्त करते हैं। सभा की सहायता से ऋषिकेश में भी एक विद्यालय चल रहा है।

स्वामी सत्यदेवजी के निरीक्षण में एक प्रचारक-विद्यालय भी खुलनेवाला है जिसके लिये स्वामीजी के नाम गुरुकुल कांगड़ी पो० आ० में सभा ने १०००) जमा कर दिया है।

सरस्वती-व्याख्यान-माला के अंतर्गत गत आषाढ़ मास में ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, गुरुकुल कांगड़ी, वानप्रस्थाश्रम, ऋषिकेश स्वर्गाश्रम में कुल १६ प्रवचन हुए।

स्वामी सत्यदेव जी के तैलचित्र का उद्घाटन भी श्री डा० धीरेंद्र वर्मा के हाथों १२ आषाढ़ को संपन्न हुआ।

स्फुट

सभा के आग्रह पर प्रांतीय सरकार ने रामचरितमानस की राजापुर और श्रावणकुंज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अयोध्या) वाली प्रतियों के लिये गोदरेज द्वारा निर्मित दो लोहे की चौराग्निन (बर्ग्लर ऐंड फायर प्रूफ) आलमारियाँ प्रदान की हैं। ये आलमारियाँ शीघ्र यथास्थान पहुँच जायँगी और मानस की उक्त दो विशेष महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ उनमें सुरक्षित रूप से रख दी जायँगी।

ऊपर 'वार्षिक अधिवेशन' शीर्षक प्रकरण के अंतर्गत जिन तैलचित्रों का उल्लेख हुआ है, उनके अतिरिक्त विश्ववंद्य महात्मा गांधीजी, स्वर्गीय महामना पंडित् मदनमोहन मालवीयजी तथा महात्मा कबीरदास जी के तैल-चित्र एवं श्रद्धेय डाक्टर भगवान्दास जी की प्रस्तर-मूर्ति का उद्घाटन भी ८ आश्विन को माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री जी के द्वारा संपन्न हुआ।

स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी की प्रस्तर-मूर्ति भी सभा तैयार करा रही है।

नवीन प्रकाशन

सभा की बहुत सी पुस्तकें जो वर्षों से अप्राप्य थीं और कुछ पाठ्य-पुस्तकें जिनकी प्रतियाँ अत्यधिक माँग के कारण इधर २-३ मास से नहीं थीं वे सब छपकर तैयार हो गई हैं। इधर कई एक महत्त्वपूर्ण नई पुस्तकें भी सभा ने प्रकाशित की हैं। इनके नाम निम्नोक्त हैं —

१—भारतीय वास्तुकला—ले० श्री परमेश्वरी लाल गुप्त, मूल्य २), इसमें नागरिक तथा धार्मिक वास्तु, स्तूप, बिहार, मंदिर, मुसलमानी वास्तुकला आदि विषयों की गंभीर मीमांसा है।

२—हिंदी का सरल भाषा-विज्ञान—ले० श्री गोपाललाल खन्ना, एम. ए. मूल्य २।) यह भाषाशास्त्र संबंधी ग्रंथ है। इसमें भाषा संबंधी सभी पहलुओं को लेकर उसकी विस्तृत विवेचना की की गई है और साहित्यिक हिंदी की उपभाषाएँ, भारतीय लिपियों का विकास तथा भाषा-संबंधी प्रागैतिहासिक खोज की पूर्ण मीमांसा की गई है।

३—भाषा विज्ञान-सार—ले० श्रीराममूर्ति मेहरोत्रा, एम. ए., मूल्य २) यह पुस्तक भी उपर्युक्त पुस्तक की ही भाँति है। इसमें भी भाषा-शास्त्र का विवेचन है। ये दोनों पुस्तकें भाषा-शास्त्र के अध्ययन के लिये परम उपादेय हैं।

४—बालोपदेश—ले० श्रीयुत पं० रामानारायण मिश्र। मूल्य ॥) पुस्तक का परिचय उसके नाम से ही व्यक्त है। बालकों को उच्च आदर्श पर ले जाने की इसे सीढ़ी ही समझिए। इसमें बालक-बालिकाओं के जानने योग्य बातें संक्षेप में और सरल भाषा में दी गई हैं।

५—हिंदुस्थानी शिष्टाचार—ले० श्री पं० रामनारायण मिश्र, मूल्य =)॥ शिष्टाचार भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। प्रस्तुत पुस्तक में शिष्टाचार संबंधी नियम बतलाए गए हैं। प्रत्येक बालक तथा शिष्टाचार-प्रेमी सज्जन के लिये यह बहुत उपयोगी है।

६—अयोध्या कांड रामायण—यह गो० तुलसीदास के रामचरितमानस के अयोध्याकांड और उनके पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का संग्रह है। कठिन शब्दों के अर्थ पाद-टिप्पणी में दे दिए गए हैं। मूल्य १)

७—हिंदी वालो, सावधान! ले० श्रीरविशंकर शुक्ल, मूल्य ३॥) इस पुस्तक में हिंदी प्रेमियों को हिंदी भाषा पर आए हुए और आनेवाले खतरे से सावधान करनेवाली सामयिक और अनुपम चेतावनी है। हिंदुस्तानी आंदोलन का एकतरफा रूप, हिंदुस्तानीवालों की कारगुजारी, हिंदुस्तानी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालों के हथकंडे शीर्षक लेखों द्वारा हिंदुस्तानी की पोल खोली गई है और यह सिद्ध किया गया है हिंदी ही राष्ट्र भाषा हो सकती है।

८—भट्ट निबंध-माला—दो भागों में, मूल्य प्रत्येक भाग का १।), यह स्व० बालकृष्ण जी भट्ट के निबंधों का संग्रह है।

९—भट्ट नाटकावली—मूल्य १) इसमें स्व० भट्टजी के बृहन्नला, वेणुसंहार और जैसा काम वैसा परिणाम नामक नाटक हैं।

१०—अच्छी हिंदी—लेखक बाबू रामचंद्र जी वर्मा। शुद्ध तथा व्याकरणानुमोदित हिंदी लिखने का ज्ञान करानेवाली अकेली पुस्तक। यह पुस्तक प्रायः सभी हिंदी परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रंथ है। मूल्य ३)

११—हिंदी प्रयोग—लेखक वही; व्याकरण का सम्यक् रूपेण ज्ञान करानेवाली मू० १॥);

१२—रूपक रत्नावली—संपादक वही। इसमें संस्कृत के प्रसिद्ध तथा प्राचीन नाटकों का सुंदर भाषा में संग्रह है। मूल्य ३॥)

हिंदी हिंदुस्तानी को लेकर राष्ट्र भाषा के लिये जो प्रतिवाद छिड़ा है उस विषय पर बहुत सी पुस्तकें सभा ने तैयार कराई हैं जिनमें सप्रमाण यह सिद्ध किया गया है कि राष्ट्रभाषा बनने का अधिकार केवल हिंदी भाषा को ही है। [इनके नाम निम्नलिखित हैं]

पंडित चंद्रबली पांडेय लिखित

कचहरी की भाषा और लिपि ॥।); भाषा का प्रश्न ॥।), बिहार में हिंदुस्तानी ।); मुल्क की जबान और फाजिल मुसलमान ।=); उर्दू का उद्गम =); मुगल बादशाहों की हिंदी ॥); उर्दू की जबान =); हकीकत उर्दू की जबान की क्या है -); उर्दू की हकीकत क्या है ।=); नेशनल स्क्रिप्ट फॉर इंडिया -); नेशनल लैंगवेज फॉर इंडिया =); हिंदी की हिमायत क्यों ॥); श्रीरविशंकर शुक्ल लिखित—हिदुस्तानी का रहस्य ।=); पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखित—हिन्दुस्तानी का उद्गम -)

नीचे लिखी अप्राप्य पुस्तकें भी छप गई हैं।

हिंदी निबंधमाला, दो भागों में, प्रत्येक १॥), हिंदी पद्यपारिजात, दो भागों में, १), १॥); करुणा ३॥), ज्ञानयोग, दो भागों में, प्रत्येक २॥); कबीर ग्रंथावली ४), तुलसी ग्रंथावली, भाग २ (गो० तुलसीदासजी के रामचरितमानस के अतिरिक्त एकादश ग्रंथों का संग्रह) मूल्य ४॥), गुरु गोविंद सिंह १॥), सिक्खों का उत्थान-पतन १॥), कीर्त्तिलता १।), संक्षिप्त हिंदी व्याकरण १।ॽ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—'अणुवचरयण पईउ' के कर्ता लक्ष्मण कवि का 'नेमिनाथ चरित्र' जयपुर के भांडार में उपलब्ध हुआ है[1]।

४—सुप्रसिद्ध कवि रइधू के २३ ग्रंथों का उल्लेख करते हुए डा० हीरालाल जी ने ५ ग्रंथों के ही नाम दिए हैं। इनके शेष १८ ग्रंथ ये हैं—

(१) आदि पुराण (महा पुराण), (२) यशोधर चरित्र, (३) व्रतसार, (४) जीवंधर चरित्र, (५) हरिवंश पुराण, (६) राम पुराण, (७) महावीर चरित्र, (८) करकंडु चरित्र, (९) जिणंधर चरित्र, (१०) उपदेश रत्नमाला, (११) आत्मसंबोधन, (१२) पुण्याश्रव कथा,[2] (१३) समत्तगुण निहान, (१४) सम्यग्गुणारोहण, (१५) सम्यक्त्व कौमुदी, (१६) सिद्धांतार्थसार, (१७) सुकौशल चरित्र, (१८) अणथमी कथा[3]।

इनमें से 'सुकौशल चरित्र' (सं० १४९६) के संबंध में श्री रामजी उपाध्याय का 'सुकौशल चरित्र' नामक लेख 'जैन-सिद्धांत-भास्कर', भाग १०, किरण २ में प्रकाशित हो चुका है। पं० परमानंद जी ने जिन २३ ग्रंथों का उल्लेख किया है उनमें से 'सिद्धचक्र चरित्र' और 'श्रीपाल चरित्र' तो एक ही हैं। अतः उसके स्थान पर मैंने डा० हीरालाल जी द्वारा सूचित 'मेघेश्वर चरित्र' को मान लिया है। मुझे उपर्युक्त १८ ग्रंथों के नामों में भी २–३ (संख्या १३–१४) नाम भ्रांतिपूर्ण से प्रतीत होते हैं। अतः उनके स्थान में निम्नलिखित नव्य ज्ञात ग्रंथों की पूर्ति की जा सकती है—

(१) पद्म पुराण, (२) धन्यकुमार चरित्र[4] (आमेर महेंद्रकीर्ति भांडार)

५—'षटकर्मोपदेश' के रचयिता अमरकीर्तिरचित 'पुरंदर विहाण कहा' का उल्लेख पं० परमानंद जी ने अपने 'अपभ्रंश भाषा का जैन कथा-साहित्य' नामक लेख में किया है। इसकी रचना भी कवि ने अपने कनिष्ठ बंधु अंबाप्रसाद की प्रेरणा से की है। प्रो० हीरालाल जी ने कवि के अन्य तीन अनुपलब्ध ग्रंथों के नाम दिए हैं, जिनमें से 'ज़सहर चरिउ' का निर्देश न करते हुए पं० परमानंद जी ने 'टिप्पणधर्म चरित', 'सुभाषित रत्ननिधि', 'धर्मोपदेश चूड़ामणि' और 'भूरण पईउ' के नाम सूचित किए हैं।[5]

६—'हरिवंश पुराणु' के कर्ता यशकीर्तिरचित 'पांडव पुराण' (सं० १४९७ या १५४७) योगिनीपुर (दिल्ली) के निवासी अग्रवाल वील्हा के पुत्र हेमराज की प्रेरणा से रचा हुआ प्राप्त हुआ है। इनकी दो अन्य रचनाओं 'रविवउ (आदित्यवार) कहा'

१—वही, वर्ष ६, पृष्ठ ३७४।

२—इसकी रचना साहु नेमिदास की प्रेरणा से हुई है। ग्रंथ की प्रशस्ति में नेमिदास के परिवार का विस्तृत परिचय दिया गया है।—वही, वर्ष ८, किरण ६,७।

३—इस ग्रंथ में रात्रि-भोजन के दोषों का बड़ा सुंदर विचार किया गया है। —वही।

४—वही, वर्ष ६, पृष्ठ ३७४। ५—वही, वर्ष ८, किरण ६,७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं 'जिनरात्रि कथा' की भी प्राप्ति हुई है[1]।

७—'बड्ढमाण कव्वु' के रचयिता जयमित्र हल्ल के एक और ग्रंथ 'मल्लिनाथ कव्वु' की प्रति आमेर के भांडार में उपलब्ध है।[2]

८—'करकंडु चरित्र' के कर्ता कवि कनकामररचित 'एकादश प्रतिमा विवरण' का उल्लेख 'अनेकांत', वर्ष ४, पृष्ठ ४९५ में पाया जाता है।

नवीन ज्ञात ग्रंथ एवं ग्रंथकार

१—निवडिदेव के शिष्य विमलसेन के शिष्य देवसेन ने ममल्लपुरी में राक्षस संवत्सर के श्रावण शुक्ल १४, बुधवार को 'सुलोचना चरित्र' की रचना की। इसमें प्रथम तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ के पुत्र चक्रवर्ती भरत के सेनापति जयकुमार की पत्नी सुलोचना का चरित्र वर्णित है। कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों में कालिदास, हर्ष, बाण, मयूर, हलिय, गोविंद, चंद्रमुख, स्वयंभू एवं पुष्पदंत का स्मरण किया है। पं० परमानंद जी ने कवि का समय १२ वीं-१३ वीं शती माना है।[3]

२—कवि माणिक्यराज के 'नागकुमार चरित्र' की प्रति आमेर के महेंद्रकीर्ति भांडार में उपलब्ध हुई है। इसकी रचना सं० १५७९ के फाल्गुन शुक्ल ९ को हुई थी। कवि ने इसे चौधरी जगती के पुत्र टोडरमल्ल को समर्पित किया है। ग्रंथ में ३३०० श्लोक हैं।[4]

३—सं० १४५४ के वैशाख शुक्ल १३ को चंदवाड के जैसवाल वासाधर की प्रेरणा से कवि धनपाल ने 'बाहुबलि चरित्र' को रचना की। प्रस्तुत ग्रंथ १८ संधियों में है। कवि धनपाल गुजरातवर्ती पाल्हणपुर के निवासी राजश्रेष्ठी पोरवाड जातीय भोवइ के पुत्र सुहडप्रभ के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सुहडादेवी और भाइयों का नाम संतोष और हरुराज था। कवि ने वासाधर के वंश का भी अच्छा परिचय दिया है। कवि धनपाल के गुरु प्रभाचंद्र थे, जिनकी आज्ञा से ये सौरिपुर यात्रार्थ आए। रास्ते में समृद्ध नगर चंदवाड देखा एवं वहाँ के वासाधर के लिये ग्रंथ बनाया।[5]

४—सं० १२७५ की पौष कृष्णा षष्ठी, रविवार को त्रिभुवनगिरि के जैसवाल साहुल के पुत्र लक्ष्मण कवि ने 'जिनदत्त चरित्र' की रचना की। त्रिभुवनगिरि के विनष्ट होने पर कवि विलरामपुर आए और यहाँ के श्रेष्ठी पुरवाड़ वंशीय विल्हण के पौत्र एवं जिनधर के पुत्र श्रीधर की प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रंथ रचा गया। लाखू या लक्ष्मण के द्वारा रचित 'चंदनषष्ठी कथा' भी उपलब्ध है। पर वे इनसे भिन्न हैं या अभिन्न, इसका निर्णय प्रमाणाभाव से नहीं किया जा सकता।[6]

१—वही। २—वही, वर्ष ६, पृष्ठ ३७४। ३—वही वर्ष ७, पृष्ठ १५९–१६४।
४—जैन-सिद्धांत-भास्कर, वर्ष ११, अंक १, पृष्ठ ३९।
५—वही, वर्ष १३, अंक २, एवं अनेकांत वर्ष ७, पृष्ठ ८३।
६—अनेकांत वर्ष ८, अंक ६। ७, पृष्ठ २७५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—'चूनडी' के रचयिता विनयचंद्र के गुरु बालचंद्र (जो उदयचंद्र के शिष्य थे) द्वारा रचित 'णिदुदुहसत्तमी कहा' एवं 'नरयउतारी कहा' उपलब्ध है।[1]

६—माथुर संघीय भट्टारक मलयकीर्ति के शिष्य भ० गुणभद्र (जो गोपाचल के पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए थे) ने बहुत सी व्रतकथाओं का निर्माण किया, जिनमें से सं० १६०२ में लिखित १५ कथाओं का गुटका दिल्ली के पंचायती मंदिर में उपलब्ध है। इन कथाओं के नाम ये हैं—

(१) अणंतवय कहा, (२) रुवण (रोहिणी) बाइसि विहाण कहा, (३) पक्खपइ कहा, (४) णह (नभ) पंचमी कहा, (५) चंदायणवय कहा, (६) चंदणछट्ठी कथा, (७) णरयउतारी दुद्धारस कहा, (८) णिद्दहसत्तमी कहा, (९) मउडसत्तमी कहा, (१०) पुप्फंजलि।वय कहा, (११) रयणत्रय विहाण कहा, (१२) दहलक्खण वय कहा, (१३) लद्धिवय विहाण कहा, (१४) सोलह कारण वय विहि, (१५) सुयंधदसमी कहा।

इनमें से संख्या १, १०, १२ की कथाएँ ग्वालियर के जैसवाल वंशीय चौधरी लक्ष्मणसिंह के पुत्र पं० भीमसेन के अनुरोध से तथा संख्या २, १३ वाली कथाएँ वहीं के संघपति साहु उद्धरण के जिन मंदिर में साहु मातंगदेव के पुत्र देवदास की प्रेरणा से रचित हैं। इसी प्रकार ७ वीं कथा साहु वीधा के पुत्र सहजपाल के लिये रची गई है। भ० गुणभद्र का समय १६ वीं शती का पूर्वार्द्ध है।[2]

७—अपभ्रंश भाषा का सबसे परवर्ती ग्रंथ दिल्ली के भ० महिंड के शिष्य भगवतीदासरचित 'मृगांकलेखा चरित्र' है, जिसकी रचना हिसार में सं० १७०० के अगहन सुदी ५, सोमवार को वर्धमान जिनालय में हुई है।[3]

८—अब अवशिष्ट अपभ्रंश ग्रंथों की सूची[4] दी जा रही है, जिनके संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी।

ग्रंथ	कर्ता	समय
(१) परमेष्ठीप्रकाशसार	श्रुतकीर्ति	सं० १५५३
(२) प्रद्युम्न चरित्र	बुधरल्हण	
(३) श्रीपाल चरित्र	नरयसेन	
(४) हरिवंश पुराण	श्रुतकीर्ति	सं० १५५२
(५) श्रावकाचार	लक्ष्मीचंद्र	
(६) हरिषेण चरित्र		
(७) दोहडा अनुपेक्षा	लक्ष्मीसेन	
(८) आत्मसंशोध काव्य	सिंहनंदि	

१—वही। २—वही। ३—वही, वर्ष ७, पृष्ठ ५५ एवं जैन-सिद्धांत-भास्कर, वर्ष ११, अंक १। ४—वही, वर्ष ६, पृष्ठ ३७४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) बारह अणुपेक्खा जल्हिग
(१०) ,, ईसर
(११) ,, लक्ष्मीचंद्र
(१२) योगी चर्या
(१३) सहातत्त्व गीत
(१४) मुक्तावलि रासा ब्र० जीवंधर
(१५) अवधू अनुपेक्षा अवधू
(१६) आराधनासार ज्ञानपीड की पाथडी
(१७) वर्धमान काव्य (जयपुर भांडार)
(१८) श्रेणिक चरित्र सं० १६५५, जयपुर भांडार
(१९) सुकमाल चरित्र भ० गुणभद्र, शिष्य पुष्पदंत
(२०) पिंगल राजमल्ल (कुछ अपभ्रंश कुछ हिंदी में रचित)

९—दिगंबर व्रतकथा-वाङ्मय बहुत विशाल है। संस्कृत एवं हिंदी भाषा में सैकड़ों ग्रंथ इसके संबंध में उपलब्ध हैं।[१] पर इसका प्रारंभ अपभ्रंश से होता है और पचास के लगभग अप्रभंश व्रतकथाएँ भी मिलती हैं। जिनमें से कई कथाओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अवशिष्ट ज्ञात व्रतकथाएँ निम्नोक्त हैं—

(१) अणथमी कथा अग्रवाल हरिश्चंद्र (१६ कडवकों में)—
(रात्रि-भोजन के दोषों पर विचार)
(२) सोक्खवई विहाण कहा विमलकीर्ति
(३) सुयंधदसमी कहा देवदत्त
(४) रविवड कहा नेमिचंद्र (माथुर संघ)
(५) अणंतवय कहा ,,
(६) ,, निनसिक
(७) मुक्तावलि विहाण ,,
(८) पुरंदर विहाण कहा ,,
(९) सोलह कारण कहा अभ्रु

(१०) चंदनषष्ठी विधान, (११) मुक्तावलि कथा, (१२) जिनरात्रि विधान, (१३) सुगंधदसमी, (१४) चौदह गुणगण। इसी प्रकार अज्ञात कर्ताओं की कई अन्य कथाएँ भी उपलब्ध हैं, पर वे इनसे भिन्न हैं या नहीं, इसका निर्णय पाठ के मिलान किए बिना नहीं किया जा सकता।

१—जैन-सिद्धांत-भास्कर, वर्ष ११, अंक १ में प्रकाशित मेरा 'दिगंबर जैन-व्रतकथाएँ' नामक लेख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आलम' की कृतियाँ

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र

'खोज' में 'आलम' कवि के निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख है—

[१] आलम केलि (१९०३–३३)
[२] आलम कवि की कविता (१९३३–९ बी)
[३] आलम के कवित्त (१९२३–९ सी)
[४] कवित्त संग्रह (१९४१)
[५] संग्रह (१९२३–९ डी)
[६] छप्पय (१९२३–९ स)
[७] सुदामाचरित (१९३५–४, १९४३)
[८] श्यामसनेही (१९३२–६)
[९] माधवानलकामकंदला (१९०४–९)

इनमें संख्या १ से ५ तक के ग्रंथ एक ही हैं। 'आलमकेलि' में कई खंड हैं। उनके स्फुट अंश पृथक् होकर इन नामों से व्यक्त हुए हैं—कहीं ग्रंथ का नाम न मिलने से, कहीं पुष्पिका में 'आलम के कवित्त' नाम होने से। 'आलमकेलि' का और कोई नाम न मिलने से काँकरौली के पुस्तकाध्यक्ष ने उसका एक नया नाम 'चतुःशती' गढ़ लिया है, क्योंकि 'आलमकेलि' में कुल चार सौ छंद हैं। कहीं संख्या कम भी मिलती है। जैसे, मुद्रित 'आलमकेलि' में ३९७ छंद हैं। इसका कारण यही है कि ३ छंद उसमें नहीं हैं। एक प्रति में अंत की संख्या ४०२ दी गई है। पर उसमें दो छंद दो दो बार लिखे गए हैं। 'छप्पय' नाम की कोई पोथी नहीं है, १४ छप्पय एक साथ 'आलम' के कहीं मिले हैं, उन्हें पृथक् नाम दे दिया गया है, इस प्रकार तो 'आलम' के सैकड़ों कवित्त-सवैये संग्रह-ग्रंथों में उपलब्ध हैं। पर पृथक् ग्रंथ रूप में उनका उल्लेख नहीं हो सकता। अतः यह भी स्फुट रचना ही है, ग्रंथ नहीं। 'सुदामाचरित' में श्रीकृष्ण से भेंट करने के लिये सुदामा के द्वारका जाने और दारिद्र्य दूर होने की कथा वर्णित है। यह पोथी लावनी या ककुभ छंद में है। भाषा रेखता (खड़ी बोली) है। 'श्यामसनेही' में रुक्मिणी के व्याह का वर्णन है। यह खंडकाव्य है; दोहे, चौपाइयों में प्रणीत हुआ है। 'माधवानल-कामकंदला' प्रेम-काव्य है। इसमें दोहे, सोरठे, चौपाइयों का विधान है। इनमें अतिरिक्त 'व्रजभारती' (१,८ पृष्ठ २०) में 'अक्षरमालिका' का उल्लेख है, जिसमें 'आलम' के कवित्त, सवैये बारहखड़ी के अनुक्रम से रखे गए हैं। उसमें 'आलमकेलि' के ही छंद हैं। अतः 'आलमकेलि' के विचार में वह भी गतार्थ है। इस प्रकार 'आलम' के निम्न-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखित ग्रंथ विचार करने को रह जाते हैं—'माधवानलकामकंद, 'श्यामसनेही' 'सुदामाचरित' और 'आलमकेलि'। इनमें से 'आलमकेलि' मुक्तक रचनाओं का संग्रह है। शेष तीन प्रबंधकाव्य हैं। 'माधवानलकामकंदला' और 'श्यामसनेही' दोनों पुस्तकें एक ही ढर्रे पर लिखी गई हैं। 'सुदामाचरित' का ढर्रा दूसरे प्रकार का है। इन तीनों में सबसे बड़ी रचना 'माधवानलकामकंदला' है।

माधवानलकामकंदला

इस प्रबंधकाव्य की दो प्रकार की प्रतियाँ मिलती हैं। एक वे जिनमें पाँच अर्धालियों के बाद नियम से एक दोहा या सोरठा है। दूसरी वे जिनमें पाँच अर्धालियों के बाद एक सोरठा और एक दोहा भी है। दूसरे प्रकार की प्रतियों में कुछ वर्णनात्मक अंश बढ़े हुए हैं। यही नहीं, कथा-भाग भी कुछ अधिक है। दोनों प्रकार की प्रतियों की वर्ण्य वस्तु का अंतर निर्दिष्ट करने के लिये स्थूल रूप से घटनाओं का विवरण सामने रखना आवश्यक है। पहले प्रकार की प्रतियों में कथा-भाग इस प्रकार है—पुष्पावती नाम्नी नगरी में जिस समय गोपीचंद नामक राजा राज कर रहा था उस समय माधवानल नाम का योगाभ्यासी ब्राह्मण भी वहाँ रहता था, जो राजा को देव-पूजा की तुलसी दिया करता था। वह अनेक शास्त्रों में पारंगत था और वीणा बजाने में प्रवीण। उसके वीणा-वादन से नारियाँ मूर्छित हो जाती थीं। किसी दिन कोई गृहिणी भोजन का थाल लिए जा रही थी, माधव की वीणा बजी और उसकी स्वर-लहरी में मग्न हो जाने से उसके हाथ से थाल गिर पड़ा, इस पर उसका पति उसपर अप्रसन्न हो गया। थाल गिरने का कारण पूछे जाने पर उसने सच बात कह दी। वह गृहस्थ राज-दरबार में गया और उसने राजा से कहा कि आप इस ब्राह्मण को नगर से निर्वासित कर दीजिए अन्यथा हम लोग नगर त्याग देंगे। राजा ने इस पर माधवानल को बुलवा भेजा। उसके वीणा-वादन की परीक्षा ली; राजा के रनिवास की दासियों पर वही मोहक प्रभाव पड़ा। यह सोचकर कि प्रजा के नगर से चले जाने पर तो नगर ही उजड़ जायगा उसने माधवानल को तीन पान भिजवाकर यह कहलाया कि मेरे नगर से तुम निर्वासित हो। माधव वहाँ से चल पड़ा और कामावती नगरी पहुँचा। वहाँ उसने किसी दिन सुना कि कामकंदला नाम की वेश्या का गायन-वादन राजप्रासाद में हो रहा है। वह भी उसे देखने के विचार से चला। पर दरबार में उसे द्वारपाल ने नहीं जाने दिया। माधव ने द्वारपाल को बतलाया कि राजसभा में सभी सभासद अनाड़ी हैं। वेश्या नाचती है, पर उसका ताल बिगड़ता है, क्योंकि बारहो तबला बजानेवालों में से एक के हाथ में चार ही उँगलियाँ हैं। द्वारपाल ने यह अचरजभरी वार्ता राजा को जा सुनाई। राजा कामसेन ने तबलचियों को बुलवाकर इसकी जाँच की, तो पता चला कि सचमुच एक तबलची के अँगूठा ही नहीं है, मोम का अँगूठा लगा हुआ है। आश्चर्यचकित हो, उसने ब्राह्मण को बुला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजा और उसका आदर-सत्कार किया; मुकुट, कुंडल, मोती की माला और द्रव्य का उपहार दिया।। कामकंदला ने ऐसे गुणी को दिखाने के लिये विविध प्रकार की राग-रागिनियों में गान गाया। जिस समय वह गीत गाने में मग्न थी उस समय उसके अंग में चर्चित अंगराज की सुगंध से आकृष्ट होकर कहीं से कोई भौंरा उड़ता हुआ आया और उसके स्तन पर जा बैठा। संगीत भंग न हो, इस विचार से कामकंदला ने शरीर भर से वायु को केंद्रीभूत कर स्तन के रोम-कूपों से उसका ऐसा वेग और दबाव किया कि भौंरा उड़ गया। गणिका के हाव-भाव में ही अन्य लोग डूबे थे। केवल माधवानल ने इसे जान पाया। नर्तकी के इस कौशल पर मुग्ध होकर उसने राजा द्वारा लब्ध सारा उपायन उसे भेंट कर दिया। ब्राह्मण की धृष्टता पर कुपित होकर राजा ने उसे देसनिकाले का दंड दिया। पर वेश्या उसके रूप और गुण पर मुग्ध हो चुकी थी, माधव भी उसपर मोहित हो गया था। वेश्या ने उसे अपने यहाँ बुलवाया। परोक्ष रूप में उसने उसे अपने यहाँ रखा, दोनों में प्रेम हो गया। पर माधव ने राजकोप के भय से इस प्रकार गुप्त रीति से उस नगर में वास करना उचित नहीं समझा। अतः वह वहाँ से अन्यत्र चला गया। कामकंदला उसके विरह में व्याकुल रहने लगी।

जिस प्रकार कामकंदला माधवानल के विरह में संतप्त हो रही थी उसी प्रकार कामकंदला के विरह में माधवानल भी। बहुत दिनों तक वह बन बन भटकता रहा। अंत में उसने सोचा कि किसी परोपकारी की सहायता प्राप्त कर अपना संताप निवारण करना चाहिए। यह विचारकर वह विक्रम नरेश की राजधानी उज्जयिनी पहुँचा, वहाँ भी कुछ दिनों तक इधर उधर दिन काटते काटते वह किसी दिन शिवमंदिर में गया। यहाँ राजा नित्य दर्शन के लिये आया करता था। उस मंदिर की भित्ति पर उसने इस आशय का दोहा लिख दिया—

कहा करौं कित जाउँ हौं राजा राम न आहि।
सिय-वियोग संताप बस, रावौ जानत ताहि।।

विक्रम ने दोहा पढ़ा, तो उसके वियोग के वारण के लिये डुग्गी पिटवाई कि नगर में कोई वियोगी ब्राह्मण आया है, जो उसका अनुसंधान कर के मेरे समक्ष उपस्थित करेगा वह पुरस्कृत होगा। राजा ने वियोगी का पता लगने तक के लिये अन्न-जल भी त्याग दिया था। राजा की अति चतुर दासी ज्ञानवती ने वीणा बजाते और विरह-गीत गाते माधव को देखा, तो अनुमित कर लिया कि अभीष्ट व्यक्ति यही है। वह माधव को सांत्वना देकर राजसभा में ले गई। विक्रम ने उसका आदर-सत्कार किया और कुशल-प्रश्न पूछा। विरह-विपत्ति की कथा से अवगत होकर उसने माधव को समझाया कि इतने विद्याविशिष्ट ब्राह्मण होकर आप गणिका के प्रणय में क्यों पड़े। भला वेश्या भी किसी प्रणयी के साथ स्नेह-निर्वाह करती है। आप धन, राज्य आदि जो चाहें ले सकते हैं, वेश्या-प्रेम का परित्याग कीजिए। इस पर माधव ने प्रेम की एकनिष्ठता और उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त अर्थ की तुच्छता का प्रतिपादन किया। अंत में उससे कामकंदला को मिलाने के लिये विक्रम प्रतिश्रुत हुआ। फलतः उसने कामावती पर अभियान की व्यवस्था कर के सेनासहित प्रस्थान किया। जब नगर दस कोस रह गया तो राजा ने कामकंदला के प्रेम की परीक्षा लेने का विचार किया। वह वेश बदलकर नगर में प्रविष्ट हुआ और कामकंदला के यहाँ पहुँचा। दूतियों ने भद्र पुरुष के आगमन की सूचना दी। राजा कामकंदला के निकट पहुँचा, इसने उसे उदास देखकर उससे प्रश्न किया। कि मैंने वेश्या की ऐसी उदासीनता नहीं देखी, मैं तेरे रूप, गुण की प्रशंसा सुनकर तेरे पास आया हूँ और तू इस प्रकार मुझसे क्यों उदासीन है। तू जो द्रव्य चाहे, तुझे दिया जायगा। कामकंदला ने माधव ब्राह्मण के प्रेम की चर्चा की और प्रेम की एकनिष्ठता का बखान किया। राजा ने कहा कि हाँ, माधव वैरागी को मैं भी जानता हूँ, वह उज्जयिनी में वीणा बजाते हुए चक्कर काटा करता था। पर वह तो विरह में व्याकुल होकर कभी का मर चुका। इसे सुनते ही कामकंदला ने प्राण-विसर्जन कर दिया। राजा नारी-हत्या के पातक से दग्धचित्त हो पड़ाव पर लौटा और माधव से समस्त वृत्तांत कह सुनाया। कामकंदला के प्राण-त्याग का समाचार पाते ही उसने भी प्राण-परित्याग कर दिया। सारी सेना में हाहाकार मच गया कि जिस ब्राह्मण के निमित्त सारा सैन्य-संभार हुआ वही चल बसा। राजा ने भी दो दो हत्याओं के अघ से व्यथित होकर नदी-तट पर जीते जी चिता में भस्म हो जाना ही निश्चित किया। वह चितारोहण कर चुका। चिता में अग्नि-संचार मात्र का विलंब था कि उसका पुराना मित्र वैताल यह समाचार पाकर दौड़ता हुआ उसके पास आया और उसे चिता से यह कहकर पृथक् किया कि मैं अमृत लाकर दोनों को पुनरुज्जित कर दूँगा। वह पाताल से अमृत लाया और माधव के मुख में एक बूँद टपकाकर उसे जिलाया। वह 'कंदला कंदला' चिल्लाता हुआ उठ बैठा। राजा सभासमेत प्रफुल्ल हो गया। इसी प्रकार वैताल ने राजा के साथ जाकर कामंदला को भी जिलाया। वह भी माधव का नामोच्चारण करती हुई प्रबुद्ध हुई। विक्रम ने उसे सारे वृत्तांत से अवगत किया और अपना भी रहस्य उद्घाटित कर दिया। कामकंदला ने उस जैसे परोपकारी की प्रशंसा की।

राजा ने वहाँ से लौटकर श्रीपति नामक रघुवंशी दूत को कामसेन राजा के पास भेजा कि युद्ध करोगे या कामकंदला को दे दोगे। राजा ने युद्ध का निश्चय किया। फलस्वरूप घनघोर युद्ध हुआ। दोनों पक्षों के कितने ही शूर-वीर शिव की मुंडमाल में अपने कपालों को अर्पित कर सूर्य-मंडल वेध स्वर्ग सिधारे। पर विक्रम की विश्वविजयिनी सेना के समक्ष वह बेचारा कब तक टिकता, अंततोगत्वा वह हारा और उसने विक्रम को कामकंदला देकर संधि की। माधव को कामकंदला सौंपकर विक्रम उज्जयिनी लौट गया। वे दोनों पुष्पावती गए।

पर 'खोज' (१९२३-९) में जो बड़ी पोथी उपलब्ध हुई उसमें मूल कथा के आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

अजित — लेखक–श्री मैथिलीशरण गुप्त। प्रकाशक–साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)। मूल्य १॥)।

'अजित' भारत की राष्ट्रीय चेतना-धारा का प्रवाहक प्रबंधकाव्य है। इसे मैं राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' के 'उपसंहार' के रूप में ग्रहण करता हूँ—यद्यपि 'भारत-भारती' तथा 'अजित' की विषय-सीमाओं में थोड़ा अंतर है। 'भारत-भारती' भारत की संपूर्ण संस्कृति को लेकर चलती है और 'अजित' केवल राजनीति को ही ग्रहण करता है। इस थोड़े अंतर का भी कारण है; और यह कारण इन काव्यों के रचना-काल की परिस्थितियों से संबद्ध है। 'भारत-भारती' के रचना-काल की परिस्थिति में संपूर्ण भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान की चेतना-धारा प्रवाहित हो रही थी और 'अजित' के रचना-काल की परिस्थिति में अति प्रमुख रूप से भारतीय राजनीतिक चेतना-धारा। इन्हीं चेतना-धाराओं के संग चलने के कारण उक्त काव्यों में थोड़ा अंतर है। दोनों काव्यों की वृत्ति मूलतः समान होने के कारण 'अजित' हमें 'भारत-भारती' का पूरक अवश्य लगता है। हम देखते हैं कि 'भारत-भारती' की आकांक्षाएँ 'अजित' में पूर्ण होने के मार्ग पर हैं—यद्यपि पूर्ति का मार्ग केवल राजनीतिक है। यह इसी कारण कि भारतीय राजनीतिक स्वातंत्र्य के द्वारा ही संपूर्ण सांस्कृतिक पुनरुत्थान अवलंबित समझा गया। यदि 'अजित' की पूर्ति स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हुई होती तो इसमें निश्चय ही 'भारत-भारती' में आकांक्षित स्वतंत्रता का विजय-गान भी गाया गया होता।

'अजित' में अजित तथा उसके संपर्क में आनेवाले व्यक्तियों की जीवन-कथा के सूत्रों द्वारा भारत में अँगरेजों की सारी करतूतों, भारतीय जनता में स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिये किए गए विभिन्न प्रयत्नों तथा इन प्रयत्नों में उठी अनेक समस्याओं का वर्णन है। इसमें हिंदू-मुसलमान का प्रश्न, पुलीस और सेना में जागरूकता, अँगरेजों के जाने के बाद रूस के आने का भय, द्वितीय महायुद्ध, हैलटशाही, नेदरसोल, 'जनयुद्ध' की घोषणा करनेवाले कम्यूनिस्ट, बंगाल का अकाल, '४२ का विद्रोह और उसमें अँगरेजों के अत्याचार, जय हिंद, नेताजी, रचनात्मक कार्यक्रम, गांधीवाद, क्रांतिकारी आंदोलन आदि सभी का प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः समाहार है। इस प्रकार इसमें भारतीय राजनीति की गत १५–२० वर्षों की झाँकी है।

उक्त व्यक्तियों और घटनाओं की झाँकी कराते हुए भी कवि का लक्ष्य गांधी-दर्शन तथा गृहस्थ-धर्म के प्रति आस्था का प्रतिपादन जान पड़ता है। निर्दोष अजित कारागार में बंद होता है। वहाँ दादा श्यामसिंह के संपर्क में आकर उसमें स्वातंत्र-प्रेम की वृत्ति जगती है। बंदी-गृह से निकलने पर अपने घर के सभी प्राणियों को नष्ट हुआ देख वह भारतमाता की बेड़ियों को काटने के उद्देश्य से क्रांतिकारी दल में संमिलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। परंतु लुकाछिपी के जीवन से ऊबकर वह अपने विचारों की परिणति गांधीवाद में करता है। क्रांतिकारी विचार-दर्शन से उसकी आस्था जाती रही। उसकी आस्था बाह्य (तन) से हटकर अभ्यंतर पर जाती है। वह कहता है—

सब ने किया प्रयास सदा तन के रोगों पर,
क्यों अब नए प्रयोग न हों उनके योगों पर ?
गांधी जी का यही यत्न, प्रभु करे सफल हो,
क्या बाहर के विघ्न, हमारे भीतर बल हो।

अजित गांधीवाद के प्रति अपनी आस्था को जीवन में भी घुलाता-मिलाता है। जिस जमीनदार पार के कारण अजित का सत्यानास हुआ था उसके पुत्र रज्जू को वह और उसका ममेरा भाई धनराज जान से मार डालना चाहते थे, मगर अंत में रज्जू तथा अजित दोनों के मन की मैल धुल जाती है और दोनों वैर-भाव त्यागकर जीवन में पारस्परिक रूप से सहायक बनते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने गांधीवाद का प्रतिपादन पूर्ण रूप से किया है। मन की इस विशुद्धि के पश्चात् लोक-जीवन में प्रवृत्त होने का व्रत लिए हुए भी अजित को गार्हस्थ्य धर्म में लगाना कवि क्यों श्रेयस्कर समझता है, यह विचारणीय है। अजित इतना आगे बढ़ आया है कि उसके लिये गृह-जीवन की अपेक्षा लोक-जीवन ही श्रेयस्कर था। अस्तु। अंत में अजित कहता है—

आया था हे राम! तुम्हें यह जीवन देकर,
जाता हूँ मैं आज तुम्हारा ही बल लेकर।

अजित की इस वृत्ति में प्रवृत्ति मार्गी वैष्णव भक्त कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का सात्त्विक गृह-जीवन के प्रति आस्था का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त प्रबंधन-कला के कुशल कवि हैं। 'अजित' में भी उन्होंने कथा का संविधान कलात्मक ढंग से किया है। कथा में प्रभूत क्षिप्रता है, अतः केवल बाँचनेवालों को यत्र तत्र धोखा हो सकता है। कथा कवि नहीं स्वयं अजित कहता है, जिसमें संलापों का प्राधान्य है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त अपने काव्य-जीवन की प्रौढ़ावस्था से शैलीगत नवीन प्रयोग हिंदी-साहित्य के संमुख बराबर रखते आ रहे हैं। 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर' और 'कुणाल-गीत' इसके प्रमाण हैं। 'अजित' को भी मैं एक नवीन प्रयोग के रूप में ही ग्रहण करता हूँ। इधर साहित्य को जनता तक पहुँचने की बात बराबर कही जा रही है; और साहित्य जनता तक तभी पहुँच सकता है जब उसको भाषा-शैली में सारल्य का संनिवेश किया जाय। 'अजित' में हम भाषा-शैली की यह सरलता पाते हैं, और इस कार्य में कवि को पूरी सफलता मिली है। काव्य की विशिष्टताओं के समावेश के साथ ही 'अजित' में व्यवहार की भाषा का प्रयोग है, जिसमें तद्भव शब्दों का ही आधिक्य है। कहीं कहीं देशज शब्द भी आए हैं। इसमें 'तिकड़म' 'बकझक', 'बतियाना' जैसे शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग है और इस प्रकार की भी कथन-प्रणाली है—

दुगने ऊँचे उठा न दूँ तो नाम नहीं फिर।

आचार्य द्विवेदी की बोलचाल के गद्य की भाषा तथा पद्य की भाषा की एकता की कल्पना संभवतः 'अजित' में ही साकार हो सकी।

नकुल—लेखक-श्री सियारामशरण गुप्त। प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), मूल्य १॥)।

'नकुल' को मैं प्रतीकात्मक काव्य के रूपमें ग्रहण करता हूँ और इसी रूप में इसका महत्त्व भी स्थापित किया जा सकता है, अन्यथा इसमें नकुल के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन अल्प और युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, कृष्ण के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन अधिक है। अभिप्राय यह कि स्थूलतः नकुल का महत्त्व काव्य में विशेष नहीं लक्षित होता। नकुल अन्य चारों भाइयों के, यहाँ तक कि अपने छोटे सहदेव के भी, स्नेह-भाजन अवश्य हैं, सभी इनका विशेष खयाल रखते हैं। इस प्रकार स्नेह-भाजन होने के कारण नकुल में थोड़ा बाल-चापल्य भी है, जिसकी अभिव्यक्ति भीम करते हैं—

अब भी बालक वही चिरायुष्मान नकुल है,
गया बहुत कुछ गया नहीं इसका वह शैशव,
तब तो ऊँची-बड़ी बात कह उठता जब तब!

सबके प्रेम-पात्र होने के कारण ये निश्चिंत भी रहते हैं। इन्हें वाद्य आदि भी, जैसे, वंशी, प्रिय है। नकुल एक प्रकार के वाद्य का नाम भी है।

नकुल के प्रति सबका स्नेह होने के कारण पाठक की दृष्टि उनके प्रति अवश्य जाती है, मगर वह उनसे प्रभावित नहीं होता है। वह प्रभावित तो होता है नकुल को लेकर युधिष्ठिर द्वारा व्यक्त किए गए जीवन-दर्शन से। वज्रबाहु द्वारा विषय बनाए गए अमृत ह्रद का जल पीकर जब युधिष्ठिर के अतिरिक्त कृष्णसहित सभी पांडव मूर्छित हो गए तब शोकाकुल युधिष्ठिर से मणिभद्र ने कहा कि कैलासपुरी से मुझे संजीवन-कण मिला है, कहिए तो मैं उसका उपयोग करूँ। इसे सुन युधिष्ठिर ने तुरत नकुल का नामोच्चार किया और जब जब मणिभद्र ने पूछा तब तब उन्होंने नकुल का ही नाम लिया। इससे मणिभद्र ने आश्चर्यान्वित हो धर्मराज से कहा कि अर्जुन और भीम का महत्त्व भी तो कम नही! इसे सुन युधिष्ठिर ने कहा—

छोटे के भी लिये बड़े से बड़ा समर्पण—
किया जाय जब, तभी धर्म-धन का संरक्षण।

× × ×

थकित बड़े जन सोच रहे हैं— इस भूतल के
जन जितने हैं जहाँ कहीं हलके से हलके,
रहने उनके लिये न देंगे संजीवन-कण,
सुख सब अपने अर्थ, अन्य का शोषण, शोषण!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मराज की इस चिंतना को सुन मणिभद्र ने कहा कि छोटे-बड़े का भेद तो बना ही रहेगा। इस पर उन्होंने कहा—

होगा निश्चय क्षुद्र-महत् का भेद भुवन में,
सब हैं एक समान परंतु मरण-जीवन में।
सोच रहे हैं आर्य कि गांडीवी के खर शर—
कर सकते हैं शांति प्रतिष्ठित इस पृथ्वी पर।
मुझको तो विश्वास नहीं है रंचक इसमें,
देंगे कैसे अमृत, बुझे स्वयमपि जो विष में!
धरना होगा आत्मदान के पावन-मग को,
नव जीवन परिपूर्ण जिन्हें करना है जग को।

× × ×

लेना होगा निखिल-क्षेम-व्रत निर्भय हम को,
देना होगा बड़ा भाग लघु से लघुतम को।

यह सुन मणिभद्र ने अपनी संजीवनी का प्रयोग पहले नकुल पर ही किया और जो शेष था उसे उन्हीं को समर्पित कर दिया। नकुल कुशल वैद्य के रूप में भी विख्यात हैं। पशु-चिकित्सा के ये विशेषज्ञ थे। धर्म और युद्ध-शास्त्र में भी ये पारंगत थे। अस्तु। इस प्रकार हम देखते हैं कि नकुल के आश्रय से वर्तमान युग में स्थापित समाज और जीवन-दर्शन का शाश्वत सत्य अभिव्यक्त किया गया है। नकुल समाज और जीवन के लघु के प्रतीक अथवा प्रतिनिधि हैं। कवि का कथन है कि समाज और जीवन में जो व्यक्ति छोटे हैं उनके रक्षण का भार बड़ों को ग्रहण करना चाहिए और उन्हें उनका अधिकार प्रदान करना चाहिए। कवि ने धर्मराज द्वारा अहिंसा की भावना भी व्यक्त कराई है। अब यह स्पष्ट है कि काव्य का लक्ष्य नकुल को ही लेकर स्थापित होता है, अतः काव्य में उनके गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णना की अल्पता में भी उसका नाम 'नकुल' रखा गया। इस मीमांसा से यह विदित होता है कि 'नकुल' युग की चिंतना-धारा को स्पर्श करता चला है। यह युग-काव्य है। जीवन तथा समाज के अन्य तथ्यों की अभिव्यक्ति भी कवि ने यथास्थल की है।

श्री सियारामशरण गुप्त मँजे कलाकार हैं। अतः उनकी रचनाओं में काव्य-कला के सभी तत्त्वों का समावेश स्वाभाविक है। 'नकुल' में इनका चाहे जहाँ भी दर्शन किया जा सकता है। 'नकुल' की कथा का संविधान बहुत ही कलात्मक है; इस संविधान में श्री सियारामशरण की कथाकारिता भी उभरी हुई दृष्टिगत होती है। कथा की संयोजना में कथा के कुतूहल आदि तत्त्वों पर ध्यान रखा गया है। पुस्तक की कथा पाँच अंशों में विभक्त है और यह क्रमशः विकसित होते होते अंतिम अंश में पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँचती है। कथा की धारा मंथर गति से प्रवाहित हुई है और मार्ग में पड़नेवाले सभी भावों और वस्तुओं के रमणीय चित्र कवि उपस्थित करता है। कवि ने प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) अदालतों से जनता के नाम सभी सम्मन, घोषणाएँ इत्यादि देवनागरी लिपि में जारी की जायँ, और

(ख) अदालतों में सब लोग अपने प्रार्थनापत्र अथवा शिकायतें देवनागरी लिपि में, और यदि वे हिंदी (नागरी ?) न जानते हों तो फारसी लिपि में दे सकते हैं।

सरकारी दफ्तरों की भाषा

अब से सरकारी कामों और पत्र-व्यवहार के लिये सरकारी दफ्तरों की मान्य भाषा हिंदी होगी, किंतु जब तक इस आदेश को वास्तविक और पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने का विस्तृत प्रबंध नहीं कर लिया जा सकेगा तब तक हिंदी न जाननेवाले सरकारी कर्मचारी और वे, जिनके लिये हिंदी प्रयोग करने का प्रबंध पूरा नहीं हो पाएगा, उस भाषा का प्रयोग कर सकेंगे जिसका व्यवहार वे इस आज्ञा के निकलने के पहले करते रहे हैं।

छपे हुए फार्म वगैरह

पहली दिसंबर १९४७ ई० से सभी फार्म हिंदी में छापे जायँगे। जो फार्म किसी अन्य भाषा में छपे हुए रखे हैं उनका प्रयोग होता रहेगा। किंतु हिंदी जाननेवाले कर्मचारी उन्हें हिंदी में कर लेंगे। सरकारी दफ्तरों के सभी साइनबोर्ड, नोटिस इत्यादि को, जो आजकल हिंदी में नहीं है, यथाशीघ्र हिंदी में कर दिए जाने का आदेश भी दे दिया गया है।

स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ की जीवनी

विज्ञानाचार्य स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ भारत के उन उद्भट विद्वानों में से एक थे जिनका हिंदी-संसार ही नहीं अपितु समस्त संसार ऋणी है। खेद है कि ऐसी महान् आत्मा की अभी तक कोई जीवनी नहीं लिखी गई है। उनकी सब रचनाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। उनका निज का पुस्तकालय, जिसमें प्रकाशित और अप्रकाशित हजारों पुस्तकें थीं, शायद प्रयाग के कायस्थ पाठशाला को दे दिया गया है।

स्वर्गीय गौड़ जी मेरे फुफेरे भाई थे। पूज्य श्री शिवपूजनसहाय के अनुरोध से तथा स्वयं अपनी अंतःप्रेरणा के वशीभूत हो मैं गौड़ जी की जीवनी लिखना चाहता हूँ। इसलिये समाचार-पत्रों के संपादकों, प्रकाशकों, लेखकों तथा गौड़ जी के सहयोगियों, मित्रों, भक्तों सभी से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि वे इस शुभ कर्य में मेरी सहायता करें और जीवनी के योग्य सभी सामग्री—उनके संस्मरण, उनकी कई अवस्थाओं के चित्र, उनकी स्वरचित पुस्तकों की एक एक प्रति, उनकी अप्रकाशित पुस्तकों की सूची तथा उन स्थानों के नाम जहाँ वे सुरक्षित हैं, उनकी जीवनी से संबद्ध छोटे लेखों की प्रतिलिपियाँ, अखबारों की कतरनें, उनके हाथ के लिखे पत्र एवं अन्य चीजें आदि नीचे लिखे पते से भेजने की कृपा करें।

गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

डी० टी० एस० आफिस, पो० सोनपुर, सारन, बिहार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय श्री बालकृष्ण भट्ट की ग्रंथावली और जीवनी

स्वर्गीय श्री बालकृष्ण भट्ट का आधुनिक हिंदी-साहित्य के निर्माताओं में विशिष्ट स्थान है। उन्होंने नाटक, उपन्यास, इतिहास, निबंध, जीवनचरित आदि सभी विषयों में लिखकर हिंदी-साहित्य के भांडार को भरा। अपनी रचनाओं के संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है—"इस बत्तीस साल के 'हिंदी-प्रदीप' की जिल्दों में कितने ही ऐसे उत्तमोत्तम उपन्यास, नाटक तथा अन्यान्य प्रबंध भरे पड़े हैं वे सब यदि पुस्तकाकार छपा दिए जाँय तो निस्संदेह हिंदी-साहित्य के अंग का कुछ न कुछ कोना अवश्य भर जाय।" उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ अभी तक पुस्तकाकार नहीं छपी हैं। उनकी कृतियाँ हिंदी-साहित्य की अमूल्य संपत्ति हैं। 'साहित्य-सुमन', 'सौ अजान और एक सुजान' आदि उनकी जो दो तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं वे इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुईं, इतने वे अधिक स्थानों में पाठ्य पुस्तकों के रूप में स्वीकृत हुईं और उनके इतने अधिक संस्करण निकले जितने इस ढंग के दूसरे संग्रहों के नहीं निकले थे। इधर उनके कुछ ग्रंथ मेरे संपादकत्व में 'हिंदी-साहित्य-संमेलन' से प्रकाशित हुए हैं और कुछ 'काशी नागरीप्रचारिणी सभा' से। उनकी सभी रचनाएँ संकालित की जाँय, तो अभी कई ग्रंथ और निकल सकते हैं। कठिनाई यह है कि 'हिंदी-प्रदीप' के अनेक अंक भी अब अप्राप्य हैं। जिन महानुभावों के पास 'हिंदी-प्रदीप' के दस पाँच अंक भी पड़े हों वे यदि उन्हें 'काशी नागरीप्रचारिणी सभा' में भेज दें तो हिंदी-साहित्य के विद्यार्थी उनके द्वारा उस समय के हिंदी-साहित्य की गतिविधि का अध्ययन कर लाभ उठा सकते हैं और उनकी रचनाएँ भी पुस्तक रूप में संकलित की जा सकती हैं। मेरे पास 'हिंदी-प्रदीप' की अधिकांश प्रतियाँ तो हैं पर इतने से ही यह काम पूरा होने का नहीं।

भट्ट जी ने बत्तीस साल के 'हिंदी-प्रदीप' के जिन अंकों में नाटक, उपन्यास, कथा आदि धारावाहिक रूप से लिखे हैं, वे सब के सब मेरे पास नहीं हैं, अतः ये रचनाएँ पूरी नहीं की जा सकीं। इसी प्रकार 'देशी राज्यों का इतिहास', 'प्राचीन नदी, नगर, पर्वत आदि का विवरण', 'प्राचीन कवियों और ग्रंथकारों के परिचय', 'गीतासार समुच्चय' आदि स्तंभों में क्रमशः निकलनेवाली रचनाएँ भी अधूरी रह गई हैं। यदि पुराने साहित्यकार तथा अन्य महानुभाव भी मुझे अपने पास के 'हिंदी-प्रदीप' को देखने का अवसर दें या 'हिंदी-प्रदीप' के मिलने के संबंध में कोई उपाय बता सकें तो उनके अधूरे ग्रंथ पूरे कर दिए जायँ और ऐसे साहित्य-महारथी की कृतियाँ लुप्त होने से बचा लीं जाँय।

मेरे पितामह स्वर्गीय श्री बालकृष्ण भट्ट की कोई जीवनी भी अभी नहीं लिखी गई है। मैं उनकी जीवनी लिखना चाहता हूँ। जो महानुभाव मुझे उनके जीवन के संबंध में कुछ परिचय या संस्मरण भेजने की कृपा करेंगे मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ होऊँगा।

४८८, अहियापुर, इलाहाबाद। — विनीत

धनंजय भट्ट 'सरल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ५२—अंक ४ [नवीन संस्करण] माघ-चैत्र—सं० २००४

ऋष्यमूक-किष्किंधा की भौगोलिक अवस्थिति

राय कृष्णदास

[**पाठ-निर्देश** —'वाल्मीकि-रामायण' की वाचनाओं की दो प्रमुख धाराएँ देश में प्रवाहित हैं—एक उत्तरी भारत की, जो कश्मीर से बंगाल तक व्याप्त है, दूसरी दक्षिण भारत की, जो महाराष्ट्र और द्रविड़ भारत में चलती है। इन दोनों धाराओं की अवांतर वाचनाएँ कई हैं। प्रस्तुत लेख में उत्तरी भारतवाली धारा की प्रतिनिधि बंगाल वाचना ली गई है और दक्षिण भारतवाली की महाराष्ट्र वाचना। बंगाल वाचना के लिये गोरेसियो नामक इताली विद्वान् द्वारा कोई सौ वर्ष पहले प्रकाशित संस्करण का उपयोग किया गया है तथा महाराष्ट्र वाचना के लिये मुंबई से निर्णयसागर प्रेस द्वारा प्रकाशित संस्करण का।

उल्लेख—बं० रा० = बंगाल रामायण; मुं० रा० = मुंबई रामायण]

१ भरत के अयोध्या लौट जाने पर भगवान् रामचंद्र चित्रकूट से अत्रि मुनि के आश्रम में चले गए। यह स्थान चित्रकूट से ग्यारह मील दक्षिण मंदाकिनी नदी के किनारे है। यहीं से दंडकारण्य का दुर्गम भाग प्रारंभ होता था, किंतु इन वनों में भी ऋषियों का निवास था। चित्रकूट से लेकर दक्षिण में पंपा तक उनके आश्रम थे। पंपा ऋषि-निवास की दक्षिणी परिसीमा थी। इन आश्रमों के कारण इन वनों में ऋषियों का यातायात रहता, अतएव उन लोगों का एक मार्ग भी था। उसी मार्ग से भगवान् आगे बढ़े थे। इन वनों में राक्षस भी बसते थे। आगे जनस्थान[1] में तो उनका जनपद ही था। वे ऋषियों को बड़ा कष्ट देते और उनका संहार करते रहते।

२ अत्रि-आश्रम के आगे दुर्गम वन की गहराई में पहुँचकर उन्हें विराध राक्षस मिला जिसे मारकर वे आगे बढ़े। वहाँ से डेढ़ योजन पर वे शरभंग ऋषि के आश्रम में पहुँचे। यह आश्रम भी मंदाकिनी के ही किनारे था। यहाँ से भगवान् ने सुतीक्ष्ण के

१—राक्षसों का एक नाम पुण्यजन भी है। संभवतः जनस्थान शब्द पुण्यजन-स्थान का लघु रूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम को प्रस्थान किया। वह स्थान यहाँ से दूर था। शरभंग ने उन्हें मार्ग का निर्देश किया था, तदनुसार वे मंदाकिनी के प्रतिस्रोत अर्थात् उसके उद्गम की ओर गए। और आगे जाने पर उन्होंने एक वेगवती नदी पार की। तब उन्हें एक उन्नत शैल पर विपुल वन दिखाई पड़ा।

इसी वन में सुतीक्ष्ण का निवास था। वहाँ एक ही रात रहकर राम आगे बढ़े। कितने ही वन, पर्वत और नदी पीछे छोड़ आने पर उन्हें एक योजन विस्तृत पंचाप्सर नामक सरोवर मिला, जहाँ ऋषियों के अनेक आश्रम थे। ये आश्रम पंचाप्सर के इर्द गिर्द रहे होंगे। इन आश्रमों में भगवान् ने कहीं महीना भर, कहीं दो महीने, कहीं चार-छह महीने और कहीं बरस दो बरस रहकर अपने वनवास के दस वर्ष काट दिए। तदुपरांत वे पुनः सुतीक्ष्ण के आश्रम को लौट आए।

वहाँ कुछ दिन रहकर उन्होंने सुतीक्ष्ण से कहा कि इसी वन में कहीं अगस्त्य ऋषि रहते हैं, अब मैं कुछ समय उनकी सेवा में रहना चाहता हूँ। आप मुझे उनके आश्रम का मार्ग बतलाइए। मुनि ने उन्हें बतलाया कि यहाँ से चार योजन दक्षिण पिप्पली के वन में अगस्त्य के भाई का आश्रम है और उससे एक योजन दक्षिण उनका (अगस्त्य) आश्रम है।

अगस्त्य-भ्राता के आश्रम में होते हुए भगवान् अगस्त्य के आश्रम में पहुँचे। अगस्त्य ने उन्हें वहीं रहने को कहा, किंतु रामचंद्र ने कहा कि मुझे ऐसा स्थान बतलाइए जो बहु-कानन हो और जहाँ जल का सुपास हो। मुनिवर ने विचारकर कहा कि यहाँ से दो योजन पर पंचवटी नामक प्रदेश है; उसके पास ही गोदावरी बहती है। आप वहाँ बसें। वहाँ हर प्रकार की सुविधा है। सामने आपको महुए का बड़ा भारी वन दिखाई पड़ रहा है। उसके उत्तर से जाइए, आगे आपको वट का वृक्ष मिलेगा। उसके पास ही, पर्वत के निकट, उपारूढ़ स्थली है, वही पंचवटी है।

२ पंचवटी पहुँचकर भगवान् ने पर्णशाला बनाई। यह स्थान जनस्थान में था[१]। यहीं से कुछ काल उपरांत सीता-हरण हुआ, जिस समय भगवान् लक्ष्मण के संग वन्य-संग्रह करने गए हुए थे[२]। लौटने पर सीता को आश्रम में न पाकर लक्ष्मण के साथ वे आस पास का चप्पा-चप्पा खोजने लगे। इस अन्वेषण में आश्रम की दक्षिण ओर उन्हें मुमूर्षु जटायु मिला, जो दम तोड़ते तोड़ते रावण का नाम भर बता सका। उसका ठिकाना

१—बं० रा०, ३।६८।१,३७; ७४।१,३,७; ७५।३७.

२—स्वर्ण-मृगवाली कथा पीछे की है। रामायण में सीता ने रावण से स्पष्ट कहा है—

आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम्।
रूरून् गोधान् वराहांश्च हत्वाऽदायामिषं बहु॥

—मुंब० रा० ३।४७।२३.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताते बताते कि वह चल बसा। हाँ, अपने मस्तक से वह दक्षिण दिशा की ओर इंगित करता गया[१]। राम ने पहले आश्रमवासी मृगों को भी दक्षिण ओर देखते पाया था। फलत: उन्होंने इसी ओर जाना स्थिर किया। जटायु का संस्कार करते करते वह दिन बीत गया। सो, अपने सूने आश्रम में रात बिताकर[२] वे पश्चिम दिशा होते हुए दक्षिण की ओर बढ़े, क्योंकि मार्ग इसी प्रकार गया था[३]। तीन कोस जाने पर वे क्रौंचालय नामक घने जंगल में पहुँचे[४]। यहाँ उनकी कवंध से मुठभेड़ हुई। राम से उसकी कुछ न चली और उसने उन्हें बताया कि सीता का पता इस प्रकार चलेगा कि आगे पंपा नामक वापी पड़ेगी। उसके छोर पर ऋष्यमूक पर्वत है। वहाँ अपने भाई के डर से अपने चार सचिवों के संग सुग्रीव रहता है। उससे आप मित्रता कीजिए। वह सीता का पता लगा देगा। आप आज ही चले जाइए। इतना ही नहीं, उसने उन्हें दिखा भी दिया कि यह मार्ग गया है। पश्चिम दिशा में ये बेल (पाठांतर 'जामुन'), पियार-मेवा, कटहल, पाकर, वट, तेंदू, पीपल, कनियार और आम के तथा अन्य वृक्ष शोभित हो रहे हैं। इनके फल खाते हुए चले जाइए। अनेक प्रदेश तथा वन के बाद वन और पर्वत के बाद पर्वत पार करने पर आपको पंपा पुष्करिणी[५] मिलेगी, जिसकी स्वादु मछलियाँ आपको लक्ष्मण खिलावेंगे। उसके पश्चिम की ओर मतंग-वन नामक मतंग ऋषि का आश्रम है। वहाँ उनकी शिष्या शबरी आज भी रहती है, तथा ऋषियों के अनेक सूने आश्रम पड़े हुए हैं। वहीं पंपा के सामने ही ऋष्यमूक है। वहाँ पीपल के वन हैं एवं बन-चौलाई बहुतायत से होती है। उस पर्वत पर चढ़ना दुर्गम है। उसकी तलहटी में शिशुनाग जातिवाले हाथी रहते हैं, जो पंपा में (जिसका यह भाग मतंगसर कहलाता था) किलोल किया करते हैं। उसी पहाड़ पर एक गुफा है, जिसके सामने एक महान् ह्रद है। वहीं अपने भाई बालि के डर से किष्किंधा से भागकर सुग्रीव अपने चार सचिवों के संग रहता है, जो कभी-कभी उस पर्वत के शिखर पर भी चला जाता है, उसी के द्वारा आपको सीता का पता लगेगा[६]।

१—महाभारत, वन पर्व, २८०|२३,२४. २—बं० रा० ३|७४|१,२.

३—बं० रा०, ३|७४|३,४ (मुं बं० रा० ६६|१,२.)

४—वही, ७४|७. ५—पंपा सर (=ह्रद, पुष्करिणी, वापी) तथा नदी, दोनों कही गई है—
सर—बं० रा०, ३|७५|५७; ७६|५; ७७|६; ७८|११ तथा इन्हीं की तुल्य वाचनाएँ मुं० रा० में भी हैं।
नदी—मुं बं० रा०, ३|६|१७; ७५|१४; ४ ३|६, ७; बं० रा०, ३|७६|४६.
इस सर और नदी दोनों कहे जाने का कारण हम आगे देखेंगे।

६—बं० रा०, ३|७५|५६–५८, ६३, ६४, ६८; ७६|२-५, ७, १०, १७, १६-२२, २५, २७-३७; मुं बं० रा० ७२|७, ११, १२, १७, २०; ७३|२, ३, ५, ६, ११-१६, २३, २६, २८, ३०, ३२.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ कबंध के दिखाए मार्ग से राम लक्ष्मण ने ऋष्यमूक की ओर, पश्चिम दिशा को, प्रस्थान किया। मार्ग में कई पड़ाव करते हुए क्रमशः वे पंपा के पश्चिमी किनारे शबरी के आश्रम में पहुँचे। शबरी ने उनका स्वागत करके उन्हें ऋष्यमूक दिखलाया, जो सामने था एवं अपने आश्रम का अवलोकन भी कराया तथा वहाँ के सप्त-सागर तीर्थ का परिचय दिया और उनकी आज्ञा से अपना शरीर अग्नि को सौंप दिया, शबरी के दिवंगत हो जाने पर राम ने उन सप्त-सागरों में स्नानादि किया और ऋष्यमूक पहुँचे, जो वहाँ से बहुत दूर न था, एवं इसी पंपा के तट पर था। जान पड़ता है कि मतंग-सर का ही दूसरा नाम सप्त-सागर था, क्योंकि इसी स्थल पर मुंबई 'रामायण' में उसमें नहाने का उल्लेख है[1]।

ऋष्यमूक पर से सुग्रीव तथा उनके चार साथियों ने भगवान् को देखकर हनूमान् को उनके पास भेजा। हनूमान् को जब विश्वास हो गया कि वे बालि के भेजे नहीं हैं तो उन्हें सुग्रीव के पास ले गए।

यह ऋष्यमूक, वानरों की बस्ती—किष्किंधा—से मिला हुआ था।

४ आजकल मैसूर राज्य का अनगुंडी नामक स्थान किष्किंधा माना जाता है। किंतु प्राचीन ग्रंथों के अनुसार किष्किंधा की भौगोलिक स्थिति वहाँ नहीं सिद्ध होती। इस संबंध में पुराने साहित्य में जो भी वचन मिलते हैं उन सबसे यही प्रमाणित होता है कि किष्किंधा अनगुंडी से सैकड़ों मील उत्तर विंध्य पर्वत में थी।

किंतु विंध्य की प्राचीन परिभाषा आजकल से भिन्न थी। आजकल जिस पर्वत-परिवार को विंध्य शृंखला[2] कहते हैं, प्राचीन काल में यद्यपि उसकी लंबान प्रायः वही मानी जाती थी जो आजकल मानी जाती है तथापि चौड़ान में वह बहुत कुछ तीन स्वतंत्र कुल-पर्वतों (पर्वत-परिवारों) में विभक्त था[3]; यथा—

(१) बनास (पर्णाशा) से लेकर बेतवा (वेत्रवती) तक की सारी नदियों का उद्गम जिस अंश से हुआ है उसे पारियात्र पर्वत कहते थे; किंतु बेतवा की पड़ोसिन-बहेली जंबुला (=जामनेर) की जन्मभूमि विंध्य पर्वत है। अर्थात् जंबुला के उद्गम की बगल से विंध्य की एक पतली गोट के रूप में आरंभ होकर पारियात्र आड़ा-

---

१—बं० रा०, ३।७७।२, ६, १६, २१, २२, २५; ७८।१, २, ४, ५, ११, १७, २१, २५; (मुं० रा०, ७४। १-४, २१, २२, २५; ७५। १,२,४-७, १०, ११, १३, १४, २२, २५, २६;)

२—श्री जयचंद्र विद्यालंकारकृत भारत भूमि और उसके निवासी, पृ० २५, २६.

३—वही, पृ० ६३, ६४ इस उल्लेख से यहाँ सीमा विषयक कुछ मत-पार्थक्य है, जो मूल स्रोतों के पुनर्विचार से उत्पन्न हुआ है, अतः मूल स्रोत भी, जो पुराणों के भुवन-विन्यास (भूगोल) में व्याप्त हैं, द्रष्टव्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला के विस्तृत रूप में वामन के गगनचुंबी तीसरे चरण की तरह परिणत हो गया है। किंतु इसमें स्थान स्थान पर विंध्य पैठा हुआ था, यथा पारियात्र के निचले भाग-वाले वीतिहोत्र और अवंती प्रदेश विंध्य में परिगणित हैं।

(२) उसका पूरबी बढ़ाव जिससे उक्त जामनेर (जंबुला), धसान (दशार्ण), केन (शुक्तिमती), टोंस (तमसा) आदि नदियों का निकास है वह विंध्य पर्वत कहलाता था; और—

(३) उन दोनों के दक्खिन, जिस पर्वत-हृदय से तापी और पेनगंगा से लेकर उड़ीसा की वैतरणी तक विगलित होती है, उसका नाम ऋक्ष वा ऋक्षवान् (किंवा ऋष्यवान्[1]) पर्वत था।

अर्थात् वर्तमान विंध्य-परिवार की दोहरी पर्वत-माला के उत्तरी अंश का पश्चिमी खंड पारियात्र है और पूरबी विंध्य; तथा उसका अधिकांश दक्षिणी अंश ऋक्षवान् है, जिसे सामान्यतया नर्मदा की घाटी पारियात्र से अलग कर देती है और सोन की घाटी विंध्य से, यद्यपि दक्षिण में कहीं कहीं विंध्य की सीमा नर्मदा को डाक गई है, यथा षट्पुर (सतपुड़ा) निवासी तथा निषधवासी आदि विंध्य में भी परिगणित हैं; इसी भाँति पूरब में इतस्ततः वह सीमा सोन के पार तक पहुँची है, यथा उत्कल विंध्य में भी संमिलित है। इस सब का निष्कर्ष यह हुआ कि वर्तमान विंध्य की बिचली शृंखला का अधिकांश, जिसमें बहुत दूर तक नर्मदा बहती है, उस समय भी विंध्य ही माना जाता था, किंतु उसकी उत्तर-पश्चिमी और दक्षिणी शृंखलाएँ क्रमशः ऋक्ष तथा पारियात्र थीं।

५ सौभाग्यवश किष्किंधा की भौमिक स्थिति के विषय में ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं कि उक्त परिभाषाओं की सहायता से उसे हम कुछ कोसों के अंतर में निर्धारित कर सकते हैं।

पुराणों के भुवन-विन्यास (भूगोल) में किष्किंधक अर्थात् किष्किंधा के निवासी विंध्य-पृष्ठ पर बसनेवालों में गिने गए हैं[2]। इन्हीं विवरणों में दक्षिणापथवासियों तथा अपरांतों की सूची भी दी गई है। उनमें पांड्य, केरल, चोल, माहिषिक, वैदर्भ तथा आंध्र आदि हैं, किंतु किष्किंधकों का उल्लेख नहीं है। इस प्रकार पुराणों के अनुसार भावात्मक एवं अभावात्मक दोनों ही प्रमाणों से किष्किंधा निर्विवाद रूप से विंध्य में ही पड़ती है।

१—पौराणिक-कथा-कोश (गुजराती), पृ० ८४.

२—.........शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः ॥
.........किष्किन्धकैस्सह ।
एते जनपदा सर्वे विन्ध्य-पृष्ठ-निवासिनः ॥
—वायु० पूर्वा०, ४५।१३१-'३४; ब्रह्माण्ड० पूर्वा०, २।१६।६३-६६.; मार्कण्डेय, ५४। ५३-५५.; मत्स्य, ११४।५१-५४.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वराहमिहिर ने भी किष्किंधा का उल्लेख विंध्य जनपदों में किया है[१]। इसी प्रकार 'कौमुदी महोत्सव नाटक' में पंपा-सर और किष्किंधा की अवस्थिति स्पष्ट रूप से विंध्य में बताई गई है[२]। यह नाटक ई० ६ठी-५वीं शती का है, अर्थात् तब तक पंपा और किष्किंधा का ठीक ठीक स्थल विस्मृत नहीं हुआ था।

'महाभाष्य' में पारियात्र पर्वत आर्यावर्त की दक्षिणी सीमा बताया गया है, जिसके उपरांत किष्किंध-गंदिक (वा गांधिक) का उल्लेख है[३]। इसके प्रतिकूल पारियात्र तथा मैसूरवाली किष्किंधा के बीच विंध्य, ऋक्ष और शुक्तिमान तीन तीन तो कुल-पर्वत आ जाते हैं और कितने ही जनपद भी। अर्थात् पारियात्र की सीमा से उसका कोई भी संबंध नहीं रह जाता। ऐसी अवस्था में महर्षि पतंजलि उसका स्थान-निर्देश पारियात्र की सीमा पर क्यों करते ? अतः स्पष्ट है कि वास्तविक किष्किंधा पारियात्र के सीवान पर ही थी।

६ वाल्मीकीय 'रामायण' के वर्तमान रूप में किष्किंधा के स्थान का कोई उल्लेख नहीं मिलता। किंतु लंकाकांड में शुक, सारण ने रावण के पूछने पर वानर-सेना का जो वर्णन किया है, उसमें यद्यपि हिमालय ही नहीं, ठेठ सुमेरु तक के वानरों का उल्लेख है, तो भी उसमें अधिकांश वानरों का निवास-स्थान विंध्य पर्वत[४], तथा जांबवान् एवं उनके ऋक्ष दल का वास-स्थल नर्मदा के अनु-कूल ऋक्षवान् पर्वत कहा है[५]।

यद्यपि यह शुक-सारणोक्त वर्णन इतना काल्पनिक एवं अत्युक्तिपूर्ण है कि मूल 'रामायण' का अंश हो ही नहीं सकता—यह उसे वर्तमान रूप देनेवालों की करतूत है—तो भी उनके समय तक वानर-ऋक्षों का प्रकृत निवास-स्थान विस्मृत नहीं हुआ था; अतएव उन्हें यह साहस न हुआ कि वे अपनी कल्पना की उड़ान से ही काम लेकर रह जाते। उन्हें किष्किंधा और ऋक्ष-निवास की वास्तविक भौमिक स्थिति की चर्चा विवश होकर करनी पड़ी।

किष्किंधाकांड में ऋक्ष और वानरों का जनपद मिला हुआ वर्णित है। अर्थात् ऋक्षवान् पर्वत किष्किंधा से मिला हुआ होना चाहिए। किष्किंधा से मिला हुआ ऋष्य-मूक शिखर इसी ऋक्षवान् की एक चोटी जान पड़ता है, क्योंकि ऋक्षवान् का एक नाम ऋष्यवान् भी मिलता है, जैसा कि हमने ऊपर देखा है[६]। ऋक्ष जाति का निवास-प्रदेश

१—बृहत्संहिता, १४।९-१०.

२—पृ० ३ वाली दूसरी, तीसरी और चौथी पंक्तियाँ पृ० ७ वाले अठारहवें श्लोक के साथ पढ़िए।

३—अष्टाध्यायी, २।४।१० पर महाभाष्य।
रामायण में आए वानरों के नामों में एक गंधमादन भी है, जो बार बार आता है। क्या यह गंदिक वा गांधिक उसी से संबद्ध तो नहीं !

४—मुं'बं० रा०, ६।२७।४७.

५—वही, ६।२७।६-१२.

६—पृष्ठ ११३, पाद-टिप्पणी १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने के कारण ही इस पर्वत-माला का नाम ऋक्षवान् पड़ा होगा।

७ निदान, उक्त प्रमाणों से किष्किंधा की भौमिक स्थिति के संबंध में ये तीन बातें स्थिर होती हैं—

१—किष्किंधा विंध्य में थी;

२—वह पारियात्र के सीवान पर थी, और

३—वह ऋक्षवान् पर्वत से मिली हुई थी।

इन तीनों सूत्रों के आधार पर किष्किंधा का स्थान निश्चित करने में कोई अड़चन नहीं रह जाती। अतएव अब यह खोजना चाहिए कि वह कौन-सा स्थान हो सकता है जो ऊपर की तीनों शर्तें पूरी करता हो।

ऐसा स्थान भोपाल के नीचे से महादेव के पहाड़ तक पड़ता है, जिसके भीतर नर्मदा और उसका होशंगाबाद जिलेवाला काँठा भी आता है। पूरब में नर्मदा की सहायक दुधी नदी तथा पश्चिम में तवा नदी तक इसकी सीमा मान सकते हैं।

किष्किंधा संबंधिनी ऊपर की तीनों शर्तें यह मंडल पूरे तौर पर पूरी कर देता है, यथा—

१—यह मंडल विंध्य में पड़ता है;

२—इस मंडल के ठीक ऊपर पारियात्र का सीमांत पड़ता है, जहाँ से पारियात्र की अंतिम नदी वेतवा का निकास है; और

३—नर्मदा-पार इसकी दक्षिणी सीमा पर, जहाँ किष्किंधापुरी थी, ऋक्षवान् इसके बराबर चलता है।

साथ ही इसी घेरे के बरेली,[1] बाँदराभान[2] तथा बनखेड़ी[3] नामक स्थानों के नामों में आज भी वानर क्षेत्र की स्मृति सजीव है।

•संभवतः पंपासर एवं नदी किष्किंधा की प्राकृतिक दक्षिणी सीमा थी। उसके पश्चिमी तट पर मतंगाश्रम था और उसका निकास ऋष्यमूक से था, जो ऋक्षवान् पर्वत का एक भाग था। वहाँ बालि के अप्रवेश का वास्तविक कारण यही था कि वह ऋक्ष राज्य में पड़ता था।

१—बरेली शब्द वानरपल्ली का अपभ्रंश हो सकता है।

२—इसमें का भान शब्द 'भाल' (= भालू) का रूपांतर हो सकता है, क्योंकि हिंदी में ल और न का विनिमय हुआ करता है।

३—रामायण में वानरों का नाम वनवासी, वनचर (४|१७|३०), वनचारी (३|७२|२१; ४|१६|१६; २५|३७) एवं वनौकस (४|२२|५; ४६|७) भी मिलता है। यह शब्द उसी से संबद्ध होना चाहिए। इस परिमंडल में खोज करने से किष्किंधा शब्द का भी अपभ्रंश मिलना निश्चित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार किष्किंधा की भौमिक स्थिति चूल में ऐसी कस जाती है कि वह टस से मस नहीं हो सकती, अनगुंडी पहुँचने की कौन कहे[1]।

८ इस स्थिति के निर्दिष्ट हो जाने पर ऋक्षवान् पर्वत की जो लंबान होशंगाबाद जिले में पड़ती है उसका अधिकांश ऋक्षों का जनपद स्थिर होता है; और उसके उस भाग में, जिसे उक्त महादेव के पहाड़ कहते हैं, ऋष्यमूक शिखर ठहरता है, जिसके पास ही किष्किंध-मंडल की राजधानी किष्किंधापुरी रही होगी, क्योंकि 'रामायण' के वर्णन में वह ऋष्यमूक की निकटवर्तिनी पाई जाती है। इतना निश्चित कर लेने पर ज्ञात होता है कि मध्य प्रांत में मसूरी, शिमले की होड़ करनेवाला वर्तमान पंचमढ़ी ही संभवतः ऋष्यमूक है।

पंचमढ़ी नाम उन पाँच मढ़ियों के कारण है जो इस पर बनी हुई हैं। इन मढ़ियों के संबंध में यह अनुश्रुति है कि पांडवों ने यहाँ अज्ञातवास किया था, जिसकी स्मृति में ये बनी हैं। वस्तुतः पांडवों के इस अज्ञातवास की परंपरा में सुग्रीव के अज्ञातवास की ही स्मृति मुँदी हुई है। क्योंकि—(१) उन्होंने भी अज्ञातवास किया था और

१—किष्किंधाकांड में ही बालि के दुंदुभी (जिससे आधुनिक **टोडा** शब्द व्युत्पन्न होता है) नामक माहिष दानव से युद्ध की कथा है। उससे यह प्रकट होता है कि उन दोनों के निवास आपस में बहुत दूर न थे। इसी बात को लेकर कई विद्वानों ने अनुमान किया है कि किष्किंधा अनगुंडी में ही हो सकती है, क्योंकि माहिषों का जनपद माहिषक था, जिससे वर्तमान मैसूर-मंडल अभिप्रेत है। स्वयं मैसूर शब्द महिषपुर का अपभ्रंश है और वहीं नीलगिरि पर टोडा जाति भी बसती है, जिसकी संस्कृति का लक्ष्म महिष है। यही जाति उस प्राचीन महिष जाति का अवशेष है।

किंतु वास्तविक बात इसके बिलकुल विपरीत है। किष्किंधा का माहिषों से सांनिध्य यही सिद्ध करता है कि किष्किंधा विंध्य में थी, क्योंकि माहिषों का मूल स्थान विंध्य में ही था। टोडा जाति में आज भी यह परंपरा चली आती है कि वे वस्तुतः नीलगिरि के निवासी नहीं (ओरिजिनल इनहैबिटेंट्स आव इंडिया, ले० डा० गुस्ताव ओपर्ट, पृ० १८० तथा पृ० १८१ का नोट) इधर, विंध्य में माहिष्मती नगरी थी जिसका निवेश महिष ने किया था (पद्मपुराण—४।११५।४); यह माहिष्मती आधुनिक मांधाता है। यहीं माहिषों का मूल स्थान था, जिसकी धुँधली स्मृति टोडा जाति की उक्त अनुश्रुति में बच रही है। यद्यपि रामायण-काल के पहले ही हैहयों ने मांधाता पर अधिकार कर लिया था, किंतु माहिष उसके आस पास बने न रह गए हों, ऐसा संभव नहीं। उलटे ऐसी परिस्थिति में उनका किष्किंधा से मिला हुआ कोई संस्थान कायम करना स्वाभाविक है।

टोडों में उक्त अनुश्रुति तो है ही, उनके मृतक संस्कार भी प्राचीन वैदिक प्रेत-कर्म से बिलकुल मिलते हैं (उक्त ओरिजिनल इनहैबिटेंट्स, पृ० १८२, नोट। मि० वैदिक इंडेक्स, मृतक-संस्कार का वर्णन), जिससे यही सिद्ध होता है कि कभी न कभी वे आर्यों की बस्ती के निकट अवश्य रहते थे। इस प्रकार के संगम की मेड़ विंध्य ही है। अतएव यह अनुमान करना न्याय्य है कि माहिषों का मूल स्थान भी वहीं था। इस विषय में अधिक ऊहापोह की आवश्यकता नहीं, क्योंकि महाभारत में किष्किंधा माहिष्मती के निकट वर्णित है (सभा पर्व, ३२।१८, २३.)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) वे भी अपने मंत्रियों के सहित पाँच थे। इस प्रकार पांडवों के और उनके अज्ञातवास की उक्त दो बातें समान हैं। रही तीसरी बात, अर्थात् नाम-भेद, सो पांडवों का अज्ञातवास इतना प्रसिद्ध हुआ कि वानरोंवाली घटना उन पर आरोपित कर दी गई; अन्यथा पांडव तो कभी वनवास या अज्ञातवास के लिये उतने दक्खिन गए ही नहीं। कुरु राज्य से मिले हुए द्वैतवन में उन्होंने अपने ज्ञात वनवास का समय बिताया और मत्स्य जनपद (अलवर-जयपुर) की राजधानी विराट् नगर (वर्तमान बैराट) में अज्ञात वनवास का।

साथ ही यह बात भी लक्ष्य करने की है कि 'रामायण' में ऋष्यमूक पर किसी पूर्वकालिक चैत्य का उल्लेख है, जो ब्रह्मा-निमित्तक था[1]। उक्त मढ़ियाँ संभवतः उसी चैत्य की परंपरा में हैं।

'रामायण' में ऋष्यमूक पर साल (साखू) वृक्षों की बहुतायत वर्णित है[2]। यह भी उसके पंचमढ़ी होने का प्रमाण है, क्योंकि साल पंचमढ़ी का मुख्य (लट्ठेवाला) वृक्ष है[3]। इतना ही नहीं, यह प्रमाण ऋष्यमूक के मलय में होने का विरोधी भी है, क्योंकि मलय साल का क्षेत्र है ही नहीं।

इसी भाँति पंचमढ़ी में गुफाओं की भी बहुतायत है, जिनमें आदिम जातियों के निवास-चिह्न भरे पड़े हैं। यह बात भी उसके ऋष्यमूक होने के पक्ष में है, क्योंकि ऋक्ष जाति बिल-निवासी थी ही। इन्हीं गुफाओं में से किसी एक में छिपकर सुग्रीव रहते रहे होंगे, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है (द्रष्टव्य अंक २)।

'रामायण' की पंपा (जो सर और नदी दोनों कही गई है) पंचमढ़ी से भिड़ी हुई देनवा नदी जान पड़ती है। यह सर और नदी दोनों इस कारण कही गई है कि यह गर्मियों में सूखकर इतस्ततः दहों (ह्रदों) और झीलों के ही रूप में रह जाती है।

९ अंत में यह बात भी लक्ष्य करने की है कि किष्किंधा की उक्त भौमिक स्थिति (द्रष्टव्य अंक ८) पूर्व मध्य-काल तक भी इतनी निर्विवाद एवं रामकथा के संबंध में इतनी सर्वसंमत थी कि किष्किंधाकांड (मुंब० रा०, सर्ग ४०–४३) वाले सुग्रीव पर आरोपित, उस लंबे-चौड़े, अधिकांश में काल्पनिक एवं अत्युक्तिपूर्ण भूगोल का (जो यद्यपि स्पष्ट रूप से प्रक्षिप्त तथा निष्प्रयोजन है और जिसका समय आभ्यंतर प्रमाणों से सातवीं-आठवीं शती से पूर्व नहीं ठहरता) केंद्र उसी ठिकाने है जहाँ उक्त किष्किंधा प्रदेश था। दूसरे शब्दों में उसके रचयिता का लक्ष्य भूगोल को इस रूप में उपस्थित करना था मानो किष्किंधा-स्थित सुग्रीव वहाँ के हिसाब से चारों दिशाओं का ब्योरा बता रहे हों।

१—बं० रा०, ३|७६|३०, ३१ (मुंब० रा० ७३|३२.)
२—मुंब० रा०, ४|५|१८, १९; ८|१२-१४.
३ - इंपीरियल गजेटियर, जिल्द १९, पृ० ३०७.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१० इस ऊहापोह को पूरा करते हुए यह निवेदन करना आवश्यक है कि ऋष्य-मूक-किष्किंधा के स्थल-निर्णय का जो प्रयत्न ऊपर हुआ है उसकी पुष्टि प्रकारांतर से इस बात से भी होती है कि 'रामायण' के अनुसार वानरों ने सीता का अन्वेषण विंध्य में ही किया और लंका विंध्य से ही मिली हुई थी, जैसा कि हम एक अगले लेख में देखेंगे।

इस प्रकार चित्रकूट से आरंभ होनेवाले राम-वनवास के अंतिम स्थान—ऋष्य-मूक—किष्किंधा का ठिकाना स्थिर हो जाने पर उसके मध्यवर्ती स्थानों का स्थल-निर्णय करना दुष्कर नहीं रह जाता। ये स्थान मुख्यत: पाँच हैं—(१) सुतीक्ष्ण आश्रम, (२) पंचाप्सर सर, (३) अगस्त्य-भ्राता का आश्रम, (४) अगस्त्य का आश्रम तथा (५) पंचवटी। इनका विमर्श भी एक अन्य लेख में किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

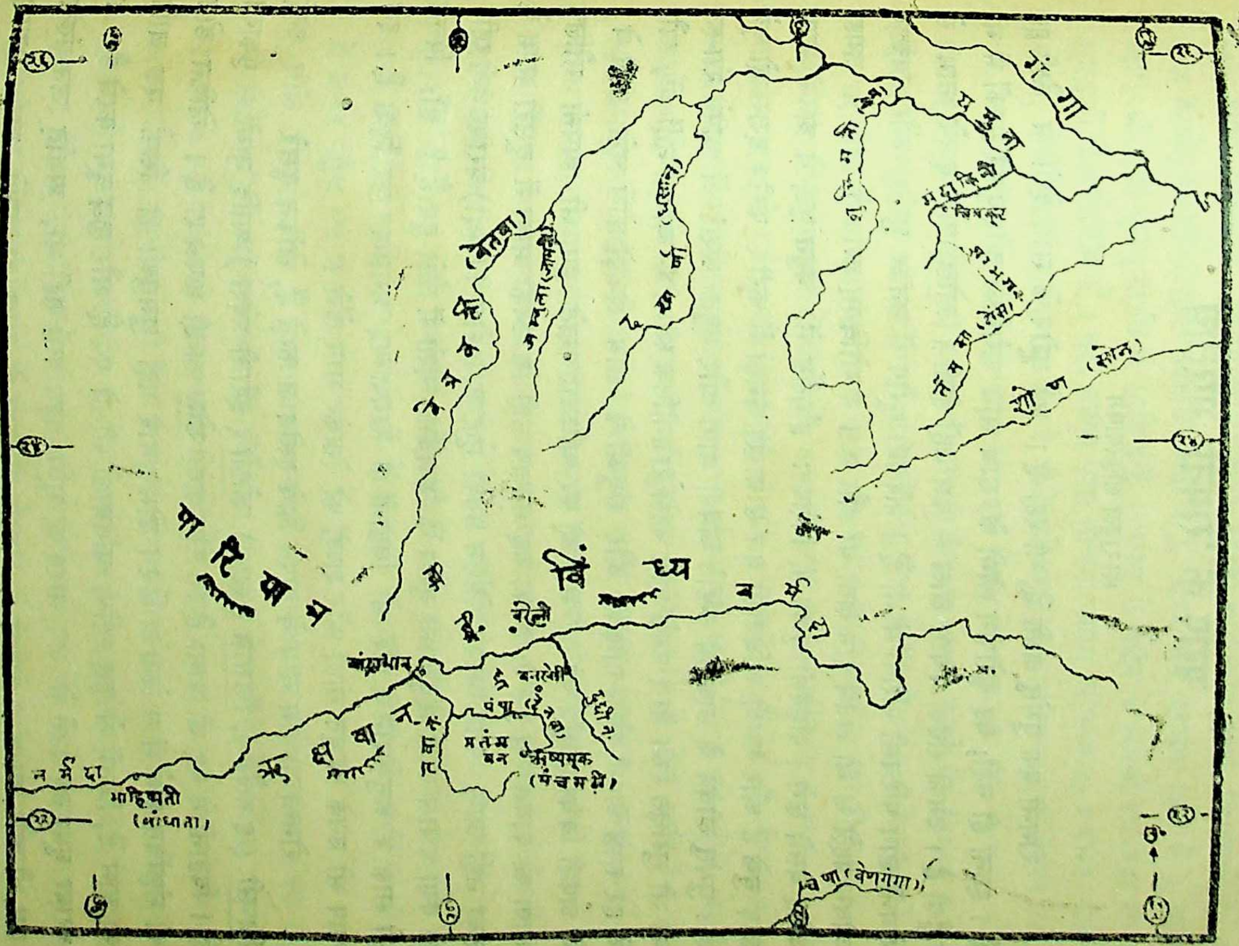

ऋष्यमूक–किष्किंधा का भूगोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोप के 'रोमनी' भारतीय

श्री राहुल सांकृत्यायन

रोमनी एक घुमंतू जाति है, या रही है। वह यूरोप के सभी देशों में फैली हुई है। इतना ही नहीं; वह यूरोपीय लोगों के साथ साथ अमेरिका और दूसरे मुल्कों में भी पहुँची है। उनकी संख्या पचास लाख से कम नहीं होगी। लोली और दूसरे नाम से रोमनी लोग पश्चिमी एशिया में भी हैं। पश्चिमी यूरोप में उनका घुमंतू और स्वच्छंद जीवन पहले से भी खतम होने लगा था और रूस में सोवियत् क्रांति के बाद वे जगह-जगह बसने लगे। पश्चिमी यूरोप में, विशेषतः इँगलैंड में, बहुत कुछ वे अपनी भाषा छोड़ चुके हैं और स्थायी अधिवासी बन साधारण जनता में करीब करीब हजम हो चुके हैं। घुमंतू जीवन के साथ भी उन्होंने अपनी भाषा और बहुत अंशों में अपने रंग-रूप को भी सुरक्षित रखा था। उनके लिये पहले राजनीतिक सीमा भी बाधक नहीं थी, और वे हर साल अपनी घोड़ा-गाड़ियों और तंबुओं के साथ सैकड़ों कोस चले जाते थे। वे अपनी विचरण-भूमि की कई भाषाओं पर अधिकार रखते हुए भी अपनी मौलिक भाषा को कायम रखे हुए थे; इसका यह मतलब नहीं कि उनकी भाषा में दूसरी भाषा के शब्द नहीं आए। आए अवश्य, लेकिन उनकी मूल भाषा रोमनी (हिंदी) बराबर बनी रही। तो क्या पचास लाख हिंदुस्तानी यूरोप के भिन्न भिन्न देशों में फैले हुए हैं? हाँ; पिछले सौ साल के अनुसंधान ने पश्चिमी विद्वानों के समक्ष यह प्रमाणित कर दिया है। इसे आप भी उनके उद्धृत गीतों और शब्दों को देखकर मान लेंगे।

रोमनी या रोम नाम वे अपने लिये इस्तेमाल करते हैं, लेकिन दूसरे लोग उन्हें जिप्सी (इँगलैंड), सिगान (रूस), लोली (ईरानी प्रदेश) आदि नामों से पुकारते हैं। विद्वानों ने यह भी माना है कि रोम शब्द डोम का ही अपभ्रंश है। लेकिन डोम को संकुचित अर्थ में न लेना चाहिए। डोम हमारे यहाँ घुमंतुओं की सिर्फ एक जाति का नाम है, जिनमें से कुछ स्थायी अधिवासी भी हो गए हैं और कुछ घूमा करते हैं। वे बराबर घूमा तब करते थे जब भारत की भूमि बहुत बसी नहीं थी, अर्थात् जन-संख्या कम थी और वन-प्रांतर अधिक थे। आबादी बढ़ने के साथ ही उनके स्वतंत्र भ्रमण में रुकावट हुई। खाने पीने की तकलीफों ने जीविकार्थ दूसरे तरीकों को स्वीकार करने के लिये उन्हें बाध्य किया, जिससे आगे चलकर उन्हें जरायम पेशे के गड्ढे में गिरना पड़ा और कितने लोग समझने लगे कि चोरी और अपराध उनके रक्त में हैं। उन्होंने उनकी आर्थिक मजबूरियों की ओर ध्यान नहीं दिया। अस्तु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डोम के अतिरिक्त और भी घुमंतू जातियाँ हमारे देश में हैं। कितने ही बंदर-भालू नचाते हैं, कितने ही मदारी का खेल दिखलाते हैं, कितने ही नट का खेल करते हैं और भाग्य भाखते हैं। कितने ही नट हैं जो आल्हा गाते और कुश्ती सिखलाते हैं। इसी तरह कँगड़े, बंगाली (मुजफ्फरनगर जिले में), गदहिया (दरभंगा जिले में), बनजारे आदि भी इसी घुमंतू जाति में शामिल हैं। भारत से बाहर के रोमनी इन सब भारतीय घुमंतुओं के प्रतिनिधि हैं। वहाँ उनका पेशा नाचना-गाना, बंदर-भालू नचाना, घोड़फेरी करना, हाथ देखना आदि रहा है। ये सभी पेशे आज भी भारतीय घुमंतुओं में देखे जाते हैं।

रोमनी कब भारत से बाहर गए, इस विषय में बहुत से मत हैं। कितने ही विद्वान् तो उनकी भाषा को प्राकृत से निकली साबित करना चाहते हैं, जिसका अर्थ यह है कि रोमनी ईसा की छठीं सदी से पहले हिंदुस्तान से निकले थे। लेकिन उनकी भाषा का उदाहरण देकर प्रमाणित करते हैं कि वह समय इतना प्राचीन नहीं हो सकता। उसे ग्यारहवीं, बारहवीं सदी से पहले ले जाना बिलकुल संभव नहीं मालूम पड़ता। यह बात उनकी शब्दावली और उनके क्रिया पदों से स्पष्ट हो जाती है। वैसे तो वे लोग इससे बहुत पहले भी अफगानिस्तान, ईरान और मध्य-एशिया में घूमते-फिरते रहे होंगे, जैसा कि उनके भाई-बंधु 'ईरानी' आज भी हिंदुस्तान में घूमते फिरते देखे जाते हैं। लेकिन मुसलिम-युग से पहले भारत के साथ उनका संबंध बराबर बना रहा, उनका यहाँ आना जाना लगातार लगा रहा। इसी लिये भाषा का संबंध भी अक्षुण्ण बना रहा। जान पड़ता है कि एक ऐसा समय आया जब भारत से उनका संबंध टूट गया। भारत से बाहर गए रोमनी फिर भारत में फेरा नहीं दे सके। धीरे धीरे वे पश्चिम की ओर बढ़ते हुए यूरोप में छा गए। ऐसा करने में उन्हें सदियाँ लगीं और जिन देशों से होकर वे गुजरे उनके कितने ही शब्द उनकी भाषा में मिल गए। पंद्रहवीं, सोलहवीं सदी में वे यूरोप में जरूर पहुँच गए थे।

रोमनी भाषा के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि उसका संबंध अवधी और भोजपुरी से बहुत अधिक है—विशेषतः भोजपुरी से। वैसे तो बँगला, व्रज और पंजाबी के भी कितने ही शब्द उसमें मिलते हैं। हमारे यहाँ के घुमंतुओं की भाषा का अध्ययन अभी शुरू भी नहीं हुआ। उनके जीवन के बारे में अभी कम खोज हुई है। दक्षिण में आंध्र और कर्णाटक से लेकर सारे भारत में इस संबंध में खोज होने की आवश्यकता है। यूरोप में कितने ही खोजियों ने अपने काम के लिये उनके साथ सालों घुमंतू जीवन बिताए, कितनों ने अस्थायी तौर पर उनके डेरों का आश्रय लिया। रूस में रोमनी भाषा के सबसे बड़े विद्वान् अकदमिक वरन्निकोफ अपनी तरुणाई के जीवन को बहुत ईर्ष्यापूर्वक अब भी स्मरण करते हैं, जब उन्होंने 'सिगान' लोगों के डेरों में अपना समय बिताया था। श्री वरन्निकोफ संस्कृत और दूसरी प्राचीन भारतीय भाषाओं के पंडित हैं। हिंदी का उनके जैसा बड़ा विद्वान् यूरोप में आजकल शायद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही होगा। 'प्रेमसागर' का रूसी अनुवाद उन्होंने पहले प्रकाशित कराया था। इसी साल उनके 'रामचरित-मानस' का पद्यबद्ध रूसी रूपांतर प्रकाशित हुआ है। श्री बरन्निकोफ ने रोमनी भाषा के विषय में बहुत से लेख और पुस्तकें लिखी हैं। कोश और उसका व्याकरण भी बनाया है। यूरोप के और देशों में भी कई विद्वानों ने इस संबंध में खोज की है। रोमनी लोगों के स्वच्छंद जीवन ने अनेक कवियों तथा लेखकों को अपनी ओर आकृष्ट किया। रूसी कालिदास पुश्किन् ने उनकी ओर आकृष्ट हो उनके विषय में कविताएँ कीं।

रोमनी लोग साँवले हुआ करते हैं। चार-पाँच सौ साल तक रूस जैसे सर्द मुल्क में रहने पर आज भी बहुत से सिगान रंग में मुझसे मिल जाते थे और मेरे लड़के इगर को तो दूसरे लड़के सिगान कहा करते हैं। इस पर वह जवाब देता है—"नहीं, मैं इंदुस् (हिंदू) हूँ।" उसे क्या मालूम कि सिगान भी 'इंदुस्' हैं। वस्तुतः रोमनी भी यह भूल गए हैं कि हमारे पूर्वज हिंदू थे। एक दिन लेनिनग्राद के एक बाग में मैं टहल रहा था। दो रोमनी स्त्रियाँ मेरे पास आईं और 'भाग्य' भाखने के लिये कहने लगीं। मुझे अधिक शिक्षा-संपन्न जान उन्हें भ्रम हुआ होगा। मैंने कहा—"क्या सिगान भी सिगान का भाग्य भाखेगा?" एक ने 'बारिन (भद्र जन)' कहना चाहा, किंतु उसकी सखी ने दृढ़तापूर्वक कहा—"देख नहीं रही है, शकल सूरत रोम की है?" सिगान भाषा में बातचीत नहीं हुई, अन्यथा पोल खुल जाती, क्योंकि तब बहुत थोड़े ही शब्द मुझे मालूम थे।

सिगान बहुत सुंदर होते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि सभी सिगानुच्काएँ रोमनी तरुणियाँ उर्वशी और मेनका होती हैं। हाँ, रूसियों और दूसरों की अपेक्षा उनमें सुंदरियों की संख्या अधिक होती है। यूरोपीय सौंदर्य-प्रेमियों को यदि कोई शिकायत हो सकती है तो सिर्फ उनके रंग से। वे उन्हें काले कहते हैं। लेकिन काले वे यूरोपीय लोगों में ही हैं। भारतीयों से तो वे बहुत अधिक गोरे हैं। मास्को के 'रोमन थियेटर' की तारकाएँ असली सिगान बनने के लिये अपने मुँह-हाथ पर रंग पोतती हैं।

नृत्य और संगीत तो सिगान के खून में भरा हुआ है। कम से कम रूस में तो उनके बारे में यही ख्याति है। उनका संगीत शुद्ध रूसी संगीत नहीं होता। इसी तरह उनके नृत्य में भी भारतीयता का पुट रहता है, लेकिन दर्शक उनके परिदर्शनों में टूट पड़ते हैं। कितनी तरुणियाँ तो सिगानुच्का बनने के लिये गरमी के दिनों में सूर्य की धूप में बैठी रहती हैं और गर्दन तथा दूसरी जगहों से चमड़ी की एक-एक तह निकल जाने की परवाह नहीं करतीं। डेढ़ दो महीने की कठिन साधना के बाद वे अस्थायी तौर से सिगानुच्का बन भी जाती हैं, परंतु भूरे पिंगल केश तथा न-काली आँखें उनका भंडाफोड़ कर देती हैं। सौंदर्य और संगीत के लिये इतना आदर होने पर भी महाक्रांति (सन् १९१७) से पहले सिगानों को बहुत नीची दृष्टि से देखा जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी बार सिगान-सौंदर्य पर मुग्ध हो कोई भद्रकुल-पुत्र प्रणय और परिणय के पाश में बँध जाता था, किंतु उसे गुप्त रखने की चेष्टा की जाती थी। अब तो तीन चार पीढ़ी में इस तरह का कोई संबंध रहा हो तो उसे बड़े अभिमान से प्रगट किया जाता है। मेरे एक दोस्त की महाश्वेता पत्नी, जिनके महापिंगल केश को देखकर सिगान-रक्त का संदेह भी नहीं हो सकता था, बड़े अभिमान से कह रही थीं कि मेरी दादी सिगानों के डेरे में ही पैदा हुई थी।

बहुत से सिगान तो मेरे जैसे भारतीयों को देखकर समझते हैं कि यह आकस्मिक सादृश्य है। 'मास्को रोमनी-नाट्यशाला' के कुछ अभिनेताओं और अभिनेत्रियों से बात करते समय जब मैंने कहा कि तुम हमारे ही वंश के हो, बहुत सदियाँ हुईं जब कुछ हमारे बहन-भाई पच्छिम की ओर आए, वे ही आदि-सिगान थे; तब नाट्यशाला के सूत्र-धार ने इतना भर कहा कि मैंने भी ऐसा ही सुना है। दूसरे तो यह सुन भी नहीं पाए थे। जब मैंने यहाँ दी हुई शब्दावली के सौ शब्दों का पारायण किया, तब सबने एक स्वर से कहा—"तो निश्चय ही हम इंदुस् हैं।" एक दिन तो प्रधान अभिनेत्री ने अपनी भतीजी को दिखलाकर कहा—"मैं चाहती हूँ कि इसका ब्याह किसी इंदुस् से हो।" मैंने कहा—"यह त्रिपुर-सुंदरी भला किसी इंदुस् तरुण को क्यों सौभाग्यशाली बनाने लगी?" तरुणी ने हँसकर कहा—"नहीं, मैं चाहूँगी।"

धर्म के विचार से हमारे यहाँ की तरह बाहर भी सिगानों को कोई आग्रह नहीं था। मध्य-एशिया, ईरान, तुर्की और मिस्र में सब लोग मुसलमान थे, इसलिये वे भी मुसलमान बन गए, लेकिन कट्टर नहीं। इसी प्रकार यूरोप के ईसाई मुल्कों में रोमनी (जिप्सी) लोग ईसाई बन गए, मगर उनका ईसाईपन सदा संदेह की दृष्टि से देखा जाता रहा है।

पूरबी यूरोप और सोवियत् के सिगान भारतीयता की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। शिक्षा और संस्कृति के विकास के साथ अपने इतिहास के प्रति उनमें स्वाभिमान जागरित हो चला है। आवश्यकता यह है कि हम सांस्कृतिक तल पर उनके साथ अधिक घनिष्ठता स्थापित करें। सिगान कलाकार स्त्री-पुरुष भारत आएँ, अपने संगीत, नृत्य, अभिनय को यहाँ दिखलाएँ और हमारे संगीत, नृत्य, अभिनय को अच्छी तरह देखें। वे पश्चिम में हमारी कला के कुशल दूत बन सकते हैं। भारतीय संस्कृति और कला के प्रति अनुराग पैदा कराने में वे बहुत बड़ा काम कर सकते हैं। बहुत कम सिगान अब घुमंतू रह गए हैं; वे गाँवों और शहरों में बस गए हैं। उनके कितने ही पंचायती खेतवाले अपने गाँव हैं; अपनी नाट्य-संगीत-मंडलियाँ तो हैं ही। अभी वे आपस में अपनी ही भाषा बोलते हैं, किंतु यह आशा नहीं करनी चाहिए कि बहुत पीढ़ियों तक वे उसे सुरक्षित रख सकेंगे। यदि वे कहीं एक इलाके में अधिक संख्या में बसे होते तो सोवियत्-नीति के अनुसार उनका स्वायत्त प्रजातंत्र या स्वायत्त जिला बन जाता, जहाँ सिगान-भाषा राजकीय भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाती। लेकिन वे सारे देश में बिखरे हुए हैं। समान अधिकार है, इसलिये इकट्ठा करने की आवश्यकता नहीं है।

यहाँ मैं रोमनी भाषा के १६८ शब्द और ७ गीत दे रहा हूँ। इनके विश्लेषण के लिये स्वतंत्र लेख की आवश्यकता है। पाठक शब्दों में कई महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ पाएँगे, उन्हें कविताओं में रोमनी जीवन की स्वच्छंदता, उसके सौंदर्य और प्रेम की झाँकी मिलेगी।

रोमनी भाषा के कुछ शब्द[1]

अवेर–और
अमरो–हमरो
अमे–हम (आमि, बँगला)
अंदर्–अंतर्
अनेस्–आनेस् (अवधी)
आछे–आछे (है)
आछो–आछो (अच्छा)(व्रज)
अंदूलो–आनल (लाया)
 (भोजपुरी)
इव–हिंव (हिम)
इवंत–हिवंत (हेमंत)
इलो–हि (य) रो
उड़्न्यास्–उड़ना
उचेस्–ऊँचे
एव–यो (यह)
कामाव–कामौं (प्रेम करूँ)
कामेस्–कामस् (प्रेम करेसि)
कामेल्–कामल (प्रेम किया)
काइ–काई (क्यों)
कतिर–कहाँ (केहितीर)
किंदूलो, वि–किनल, वि
 (बेंचा)
काको–काका (चाचा)
काकी–काकी (चाची)
कुच–कुछ (बहुत)
काला–काला

कंग्ल्या–कंघी
कीरी–कीड़ो (चींटी,
 पंजाबी)
कोते–कोथे (कहाँ)
खालो–खालो
खेलेस्–खेलस्
खेर–घर
गव्–गाँव
गवरो–गँवारो
गीलि–गीत
गिनेस्–गिनेस् (अवधी)
चार–चारा (घास)
चाचो–साँचो
चीब–जीभ
चूची–चूँची
च्योर–चोर
च्योरी–चोरी
छवोरो–छौंड़ो, छोरा
छयोरी–छौंड़ी, छोरी
छोन–चाँद
जुरालो–जोरावर
तला–तरे, तले
थुद–दूध
थुव–धुवाँ
तातो–तातो (गरम)

तुमरो–तुमरो
तुत्–तू
तू–तू
थान–थान (स्थान)
तेर्नीरे–तरुणीपन (तरुनेरी)
थूलो–टूलो (मोटा, गोर्खा)
दीनो–दीनेउ (दीनो, व्रज)
दुइ–दुइ (दो)
नसाव–नठा (भागूँ, पंजाबी)
नख–नाक
नंगो–नंगो (नंगा)
पाइँ–पानी
पानी–पानी
पाशे–पासे
पुचिबे–पूछिबे (बँगला)
पुछे–पूछे
पेर–पेट
फागे–भाँगै
फारो–फारे
फारिपे–भारीप (न)
फारो–भारी
फिरे–फिरे
फुव–भूमि (भुइँ)
फुरान–पुरान
फूरो–बूढ़ो

1—अकदमिक वरन्निकोफ-कृत त्सिगांस्को–रूसकी स्लोवार (रोमनी–रूसी कोश), १९३८ ई०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फेन–बेन (बहिन)
फेनेरी–बहिनेरी
फेने–भनै
फुरो–बूढ़ो
फुरेदिर–बूढ़ा
फोरो–पुर
बरो–बड़ो
बकूरा–बकरी
बकरो–बकरा
बल–बाल
बन्या–पण्य (शाला), दूकान
बर्वालो–बड़वालो (धनी)
बरी–भारी
बरीदिरो–बड़ेडरो (मुखिया)
बख्त–बख्त (भाग्य) (फारसी)
बख्तालो–बख्तावर (भाग्यवान्)
बीबा–चाची
बीबी–चाची
बो–वो, वह
बोख–भूख
बोखालेस्–भुखालेस्(अवधी)
बोखालो–भुखालो (भोजपुरी)
बोरी–बहुरि (या), बहू
बुत्–बहुत
बुरितो–बुरा
बियातो–ब्यारो(अवधी) बेटा,
बेर्र्श–वर्ष
बेशी–बइसी, बैठी
ब्याव–ब्याह
मइ–महा (न्)
मया–महा (न्)
मइथुलो–महा स्थूल, महा थूलो

माखे–माखत
मंद्रो–मंडा (बुंदेलखंडी) (रोटी)
मरो–मंडा (रोटी)
मनुस्–मानुस
मस–मांस
मातो–मातो (मस्त)
माच्यो–माछो (मछली)
माछो–माछो
मूके–मोचै
मारव–मारब (भोजपुरी, मैथिली), मारूँगा
मोरेस्–मारेस् (अवधी)
मारेला–मारैला (भोजपुरी)
मांगव–माँगब (भोजपुरी, मैथिली)
माँगेस्–माँगेस् (अवधी)
मँगेला–माँगैला (भोजपुरी)
माँगलो–माँगलो
मीरी–मेरी
मीरे–मेरे
मीरो–मेरो
मे–मैं
मुलो–मुअलो (मरा)
याग–आग
यावेस्–आइस्
याख–आँख
याखोरी–अँखड़ी
याछे–आछे (है)
राइ–राजा, राय
राया–राजा, राय
राखेस्–राखेस् (अवधी)
रातिरी–रात्रि
रोवे–रोवै (भोजपुरी)

रुपए–रुपैया (ज़ोल्तोइ)
रीच–रीछ
लीनो–लीनो (व्रज)
लावा–लावा (अवधी)
लेला–लेला (भोजपुरी)
लाज–लाज
वस्त–दस्त (बाहु)
वंगार–अंगार (कोयला)
वेंग्लो–अंगार
वूचो–ऊँचो
वुश्त–ओष्ठ
विकिंदूलो–विकिनल (बेंचा) (भोजपुरी)
वबुर–औंर
शागा–साग (शाक)
शाख–साग
शो–सो
शुको–सूखो
शिलालो–सिरालो
शिग–सींग
शेरांद–सिराहन
शेरो–शेर (फारसी)
सव–छ
ससुइ–सास, ससुई (भोजपुरी)
सकूलो–ससुर
सानो–सानू (छोटा-गोर्खा)
सारो–सारा
सिकलो–सीखल (सीखा) (भोजपुरी)
सिगो–शीघ्र
सिग्–शीघ्र
सोवोरो–सारो
सोवे–सोवै (भोजपुरी)
सो–सो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोमनी गीत

(मूल)

(१)

ओइ ज़-बेचिरा दॅं पोल्-नोची, दाया राया ना सोवेला।
कइ ज़ुमये योइ पॅ वान्आ, गिलावेला इ रोवेला।
तइ लिलों मे वस्तरेस् तीरी, क़ुहों कन्न फिरौदों
"खोच् उमर मन् रॅस्त्रेलइ मन, तुके च्चिमो न फेनाव।"

(२)

"सो तेरहा मे वनिच्का, कइ जाल यिवेन् शिलालो।
कइ नेनाइ अमेन्दे वनिच्का, लोवे नि पर्नी।"
"कइ जाव मे अन्द वेश् वरो,
तइ चोराव मे, पंजेन् ग्रस्तोरेन्।
तइ लदाव मे ते बितिने, कोलेन् ग्रस्तोरेन्।"
अ थेरे रोमनी पशलाल नस्वली, इ बियातुरा बोखाले।
अ मन् स्हुतिल्दे चोर्दोने ग्रस्तोरेन्त्से, जलिले मन् आन्दे बरुनो।
"ओइ प्रीलादे मान्दे रोमनी, प्रीलादे मान्दे रोमनी मीरनी चाची।
वीतिन मन् अन्दा वरुनो, बो कते मे खशिलों।
अस्तर्दे मन् खलौदे ग्रस्तोरेन्त्से, इ पेरेल वूरम् वोर्त पौ मान्।
इ जा बरे रायेस्ते, इ मॅंक लेस् मिशतो।
इ फेन्, 'राय् तू बरो, विमूक मीर्ने रोमेस्।
अमे चॅरोरे बि-बख्तले, इ मे रोम्नी इ नस्वली।

छारे तेहरे इ बोखाले, निसो अमेन्दी इ ते खा।
चीरिस् कदा न तेरेल, विमूक मीरने रोमस्।
बुदेर कदा न तेरेला, बुदेर् कदा न चोरेला।
विमूक लेस् चरोरेस्, इन् अन्दार पॅ दॅप्रोस्।

(छायानुवाद)

(१)

ओइ साँझहँ ता अधनिशा, दैया राया ना सोवैले।
जबै सोचै ओहि बानियहँ, गावैले औ रोवैले।
तब लेलों मैं हाथ तेरो, तब्बआकने फिरतौं।
"चाहे मार मोहिं गोली मोहिं, तोके साच न मनबौ।"

(२)

"का करब हमन वनिच्का, कि आइल हेमंत सिरालो।
कि नाहीं हमनके वनिच्का, ना एको पैसा।"
"कहूँ जाब मैं बन बड़ो,
तहँ चोराब मैं, पाँचे घोड़वन।
तब ले जाब बिकिनै, ओहि घोड़वन।"
औ घरे डोमनी बैसल रोगियाली, औ ब्यादुरा (बेटा) भुखाले।
औ मोहि धइलैं चोरल घोड़वन सँग, डरलैं मोहिं अंदर बंदीघर।
"ओइ आवहु मोरी डोमनी, आवहु डोमनी मेरिये ताती (प्यारी)।
कीनहु मोहिं अंदर बंदीघरहँ, काहे मैं खसलौं।
सिपहिया मोहिं धइलैं घोड़वन् सँग, औ प्रेरल चीन्हा नियरे मोहिं।
औ जा बड़े रायहँ, औ माँग ओहिं बिनती।
औ भनु, 'राय तू बड़ो, मोचु मोरयहँ डोमहँ।
हमन बेचारे बे-बख्ते (अभागे), औ मोर डोमनी रोगियाली।

छौंड़न घरे औ भुखाले, नाहीं हमनके कि खाँव।
एहिसे गइल ओउ चोरै, मोचु मेरयहँ डोमहँ।
फेर कदा न करेला, फेर कदा न चोरेला।
मोचु ओहि बेचारहँ, औ न डाल कचहरियहँ।

---

(१) गायक—सेमेन गुल्दा, आयु १८ वर्ष, स्थान—मरियूपोल (उक्रइन), संग्रह-तिथि-५ अगस्त, १९२८, पृष्ठ १२३।

(२) गायक—ख्वेदर ओलेखन्द्रोविच् कोरुलेंको, आयु ४२, स्थान—स्लाव्यांस्क, संग्रह-तिथि—१८ अगस्त, १९२७, पृष्ठ १२८–९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वोउ सर् दीखेल खसवेल,अ वोउ मनुस् इ नस्वलो।
इ सर् मेरेला इ येमेन् मुकेला, अवाइ तुन्‌चिल्
ए बियतुरे इ चरोरे।"
सुनदा दूमा बरो राइ, फेन्दा मान्दी बरो राइ,
"जा पेस्ती रोमनोरी, वोउ न लूँगो पॅ-बेशेला।
दीवा, ली त्रीन् दिवे, इ विमुकाव मे लेस्, तीरे रोमेस्।
नेक् वोउ बुदेर् कदा न तिरेल; मे विमुकाव लेस्।
इ चेरेस् लेस्तिरे वियातो, इ चेरेस् तुत् रोमना
नस्वला।"

(३)

ज़ा सुन्दा ज़ा-दीखा, वइदा ए रूज़ा,
"बहोस्लोवी दइ मन् फुरी, ते जाउ ते लाउ ए
रूज़ा।"
वॅ होस्लोवि दइ ए वइदस् ज़ा-दिया गॅद्‌लो वइदा,
ज़ा-दिया पे बुतरनेन्दे,
"पॅ देन् मन्‌गे सिवोने ग्रेस्, ओ सवारि रुपॅवो।
यो दोलोहो फरुनो, सेद्‌लो चेर्‌कास्‌को रुपवो।"
ची लउ, ची दुइ वइदा फेन्दा, यो दुनाउ पेरे गिया।

दिखेलो वइदा ये छेया, पे रेका ओ गदा मॅरेन्।
["ज़्द्रास्तुइते चिह्रानक्की-हदालोच्की,]
ओहदाइते प्रो सुद्‌बू मोयू, स्तो बूदेत् इस्लुचि-
त्सिनादोम्नोयु।"
"छ्यानेले, म्रा फेनोरया। सो सी का राइ बरो ?
जान् अखोरेन् ए रूज़ा।"
तोल्की रूज़ा रास्तेर् ज़ुमावेला, रूज़ा बरे लोवे लेला।"
आव्या रूज़ा ए वइदास्ते, "द्रास्तुइ वारिन् वारिन् मोइ,
सो ग्लावस् उहोद्‌वो प्रॅवॅरोज़ित् इलि चिह्रानम्
पॅ मिनात् !"
"दला मिने उहोद्‌ना वॅरॅज़ित्, इ व्सु प्रौदु रस्कज़ीते।",
ची लउ ची दुइ योइ फन्दा, रुप् इ सुनाकइ होर्-
स्तेन्त्सा लिया।
ये सेदलो रुपवो योइ लिया, सिवानेस् अदा ग्रेस्
योइ लिया।

ओउ जो देखल खसलस्, औ ऊ मानुस रोगियालो।
औ ऊ मरेला औ हमनके मुचैला, होइहैं तब बेटे
बेचारे।"
सुनतै बात बड़ो राय, भनत मोहिं बड़ो राय,
"जा प्रसन्न डोमनोड़ी, ऊ न बहुत बइसैला।
दुइ या तीन दिवस, औ मोचब मैं तोरे डोमहैं।
नेकु ऊ फेरु कदा न करेला, मैं मोचब वोहि !
औ खातिर ओकरे बेटनके, औ खातिर तोहि डोमनी
रोगियाली।"

(३)

सुनेउ देखेउ, बइदा रोजहँ (गुलबियहँ),
"असीसु दाई मोरी बूढ़ी, सो जाउँ सोलावउँ
रोज़हँ !"
असीसेउ दाई (माई) बइदहँ, पुकारेउ जोरेहँ बइदा,
पुकारेउँ कमकरन् कहँ,
"देहु मोर घोड़वा कबरा, औ लगाम रुपवा।
औ डोरी रेसमी, चरजामा काकेशशी रुपहुलहँ।"
कि एक कि दुइ बइदा भनतो, ओहि दुनाउ
(डेन्यूब) पारे गया।

देखलै बइदा जे छौंडिन्, नदियहँ भूला धोवत।
"नमो डोमनोरी जोतिसिनिया
भाखहु भागहँ मोरो, का होई आगम मोरो।"
"छौंडियेरिये, मोरी बहिनेड़िये, सो यो का राय बड़ो ?
जाइ आखउ (भाखउ) रोजहँ।"
केवल रोज़ा ठीक करैले, रोज़ा बड़ो पैसा लेले।"
आवी रोज़ा बइदा पहँ, "नमो ठाकुर, ठाकुर मोरे
सो का (तुम) चाहहु, भाखब या डोमफेरी ?"
"मोरो भाग भाखउ, औ सब साँचै कहियहु।"
कि एक कि दुइ ओहि भनत, रूपा सोना हाथें
लिया।
ओहि चरजामहिँ रुपवहिँ ऊ लिया, घोड़ा कबरहँ ऊ
लिया,

---

(३) गायिका—नादिया, आयु ४५ वर्ष, स्थान—स्तारी-ओस्कोल, संग्रह-तिथि—१ अगस्त, १९२८, पृष्ठ १४७-४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इ पॅ स्लेद्नो गत् फरुनो इज्लिया ।
"रुज़ेले ! सो तु केरेस् ! यो पोस्लेद्नो, यो पोस्लेद्नो ।
इ त्रुसूल् तु मान्दर इज्लेस् ।"
"अइ वइदाले म्रो प्सालरो,सो तु मान्सा इस्केर्-दान् !
त्रि-योग्नाकिरो खाच्किर्दान्, त्रि पनेस्किरो तु स किर्दान् ।"
"अइ रुज़ेले, म्री छुयोरी, ना दर् सार मारा वेना।
अइ रुज़ेले, जाके त्रे प्साला, इ फेन् लेगे तु अदाके।
कइ आव्या ओ राइ बरो, योउ मांगेल ते परुवेन्।"
"लिजा, रुज़ेले लेस् खरे, अदा यो रस् बरे का मे।"
["द्रास्तुइते वाम् चिहाने, पलिविमि द्वराने।
दवाइते पोमिनात्सी, खोत् अखोता स्वामि पविदात्सी।"]
यो वइदा [फूसेख द्विनात्सत् तबुनोउ द्विनात्सत् योउ पेरिस्ककाल् ।]
इ ये रुज़ा चोरदा । दोरेस्ने प्सला वइदास् ।
इ पो-कुस्की चिंगिर्दे । ये रूज़ा पलाल योइ जाल,
इ वइदस्किरी कुस्की, दे फरुनी फर्तुखा योइ छुवेल्।

औ अन्ते कुर्ता रेसमी लियेउ ।
"रोज़ लिये ! का तू करसि ! यो कुर्वा यो कुर्ता
औ त्रिशूल तू मेरो लेसि !"
"हे बइदड़े मोरे भाई ! का तू मोकहँ करि दियेउ !
बे आगिहिं जलाय दियेउ, बे पानिहिं तू डुबाय दियेउ।"
"हे रोज़ेलिये मेरी छोरी, ना डरु सारा हमार बनै।
हे रोज़ेलिये, जाके तेरे भाइन, औ भनु तू ऐसो ऐसो।
कहीं से आयेउ राय बड़ो, ऊ माँगेला (घोड़-) फेरी।"
"ले आ रोज़ेलिये ताहि घरे, आवे ऊ राजा बड़ो मो पहँ।"
["नमस्ते डोमने खेत (बन) के राने, कर लेवें (घोड़-) फेरी
कर लें (घोड़-) फेरी, चाहों फेनु तोहिं देखत।"]
ऊ बइदा [सब बारह झुंड, बारह ऊ ले चलला]
औ ओहि रोज़हिं चोरौले । पकड़ेउ भाई बइदहं ।
औ टूक टूक काटलै । ऊ रोज़ा पराइ जाले ।
औ बैदा के टूकटूक, अपनी रेसमी चुनरी में धरैले।

(४)

पासउ रिच्का पासउ दुनायु, को ते शिया खलावेन् गदा ।
गदा खलावेन कुच दूमा देन, आविले लेन्दे त्रिन् गज़े अंक्लिस्ते,
"द्रास्तुइते वाम् वी चिहानोच्की, वी चिहानोच्की वी वोरोज़ेच्की,
ची ने मोज़ेते वी न कर्तोख् इदात्, ची ने मोजेते वी व्ब्रु प्राउदु स्कज़ात् !
ची ने वीदिलीवी ची ने स्लिशालि, ची ने स्लिशालि शेस्तेरिक लोशादेइ" !

(४)

पासे नदिया पासे दुनायु (डेन्यूब) जहँ तरुणी धोवें भूला।
भूला धोवें बहु बात करें, अइलें रूसी तीन असवार,
"नमस्ते तुम डोमनकी तुम डोमनकी, जोतिसिनकी,
की सकहु तुम तास् (पत्ता) भखी, की न सकहु तुम सब साच कही !
की ना देखली तुम की ना सुनली, की ना सुनली छ घोड़वन !"

---

(४) गायिका—खरीतिना इवानोव्ना पिखला, आयु ६० वर्ष, जिला—जिनोव्येवक, संग्रह-तिथि—२ सितंबर १९२८, पृष्ठ १७०–७१ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मी ने वीदिली इ न स्लिशालि, चेतीइ देन् स्तोइमो, लोशद् कोर्मिमो ।"
रूज़ा पे पत्रा शुता सारे लोवे ज़ा-लिया, अवानित्सा कुच राइ वरो इ मोथोवेल्,
"ओ तु रुज़ेले, तू रायि वरी, मे न सिम् रकूलो, न सिम् राइ वरो ।
अ सिम् मे रुज़ेले, रोमनो सिम् शवो, शुन्ता तु रुज़ेले, इ नशस् दुइ ज़ेने ।
प्रोतिव तुत् प्रोतिव मन आन्दी स्वेतो नेमा,
मे सारे यो स्वेतो मे प्रोत्रोदाँ, कत्सव्या चा मे न अरखलों ।"
"ओ सुन्ता तू वानित्सी, के तू राइ वरो...सरअमे नशासो ।
के कइ मेरने फ़ालाल इशिन्, सेम् स्काकुनोउ इ सेम् रिसकोउ ।
इ वोने ज़्-अमेन् दोलेना, इ वोने अमेन् शिगिरेना ।"
"कोर्को पेस् उमराव, मे तुत् रुजो पेसा लाव ।
शुन्ता तू रुज़ेले, कइ त्रदाव मे, त्रदाव मे पेला पेस्को ग्रस्त ।
सवो अमेन् वीन्दारेला इ यमरी ज़ीस्त पत्इनेला !"

सर ओ वाना त्रग्ला, पेस्ती ग्रस्त वोउ अन्दा ।

ला रूज़ा, वोव् चोर्दा ! अन्दी स्वेतो ला ज़ालि-जारदा !
दोस्विदाना, स्क्रिउसा होलुव, स्क्तिउसा सिविइ न उसिह्दा ।

(५)

मेराव दाली, मेराव दाली, मूसव मे ते मेराव
ला बर्या ब्रिगातर, ला बरे दुखातर,
कना मे मेराब, कोन् मन् रोव्लारेला ?
ची दात् ची देयोरी, ची प्राल् ची पेयोरी ?

"हम न देखल औ ना सुनल, तीन दिन से हौं घोड़ा चरावत ।"
रोज़ा पत्रा (तास) से राखि सारा रुपया लिया,
औ बानिया कुछ राय बड़ो बोलल,
"हे तू रोज़ेलिये तू रानी बड़ी! मैं न हौं किसान ना हौं राय बड़ो ।
औ हौं मैं रोज़ेलिये डोमको छाव (छोरा),
सुन तू रोज़ेलिये भागौं दुइ जने ।
जैसी तू जैसो मैं (वैसो) अंदर जग नहियाँ,
मैं सारा यह जग घूमलों, तोर जैसी छौंडी मैं ना देखलों ।'
"हे सुन तू बानियऊ, की तू राय बड़ो.........
जो हम भगिहें ।*
जो कहूँ मेरे भाई सुनिहैं, सत घोड़वा औ सत दौरइवा ।
औ ऊ हमनके धरिहैं, औ ऊ हमनके कटिहैं ।"
काटिके अपने मरबौं, मैं तोहिं रोज़ा पासे ले लेबौं ।
सुन तू रोज़ेलिये की सवारी हम, सवार मैं अपने घोड़वा ।
घोड़ा हमनके उड़ावेला, और हमर जिनगी बँचा-वैला ।"

जब ऊ वान (इवान) चलल, कोड़ा घोड़ा के ऊ हनल ।

ओहि रोज़हिं ऊ चोरल, अन्त जग के ओहि ले जाला ।
बिदा, कबूतर लोपल, कबूतर सदा के लोपल ।

(५)

मरब दाई (माँ) मरब दाई, अवसि मैं तो मरबौं ।
ई बड़ी विपता ई बड़ दुखवा ।
अब मैं मरब, कौन मोरे रोवैला ?
की दादा की दाई, की भ्रात की बहिनोरी !

---

* नशना = भागना (पंजाबी) ।

(५) गायिका—मरूस्या, आयु १८ वर्ष, स्थान—कियेफ़, संग्रह-तिथि—१० सितंबर १९२८, पृ० १८४ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोव्लार् ला मन दाली, वेशास्के चिरिक्का,	रोवैले मोर दाईं, बनकै चिरैया,
वेशास्के चिरिक्का, मलाके लुलूजा।	बनकै चिरैया, खेतन कै फुलवा।

.जुर्को कै लीज़ा

(६)	(६)
देस् कुर् केस्को कइ द् आवेला, कोन खेरे देवला, द्आसेला।	दिवसे सूर्य जब आवेला, कौन घरे दैवा, आसे (रहे) ला?
स द् ओ .जुर्का कइ दाइ लीज़ा स द् ओ .जुर्का कइ दाइ लीजा।	इहै जुर्का औ दाईं (वेरी) लीज़ा, इहै०।
"दा सुनेस् तू शेइ बोरियो! ला दा खोरो ले वस्तेस्ते,	"हाँ सुनसि तू छोरी बहुरिया, हाँ घड़ा ले हाथ में,
अइ तिलारता ला मोलाते, मोल अमेन्गो ते-तीनेस्!"	औ जा ओहि मद (दारू) घर, मद हमनके तैं कीनेस्।"
पाले लीज़ा सॅम् फेनेला, "अलेस् ताते मुरो दात्।	परे लीज़ा स्वयं भनैले, "अरे तात मोरे दादा!
सर् सी देस् आ दा कुर्केस्को, कते मोलो या ननाइ!"	जो कि दिन ईरविस्को, कतहूँ मदिरा नाहिं।"
पाले .जुर्का सॅम् मोथोला, 'मूशइ मूशइ शेइ बोरियो,	परे जुर्का स्वयं बोलैला, "अवशि अवशि छोरी बहुरिया,
मूशइ मूशइ शेइ बोरियो, मौल् अमेनो तू तीनेस्!"	अवशि अवशि छोरी बहुरिया, मद हमनके तू कीनेस्!"
सो दोइ लीज़ा सॅम् केरेला! सर् पो द्रूमो कइ परेला।	सो का लीज़ा स्वयं करेले? जहँ चइबच्चा तहाँ पराले।
को ते मोल् वोइ द् अरखेला, को ते मोल् वोइद् अरखेला!	तहवाँ मदिरा ऊ पावेले, तहवाँ०।
खेर् ओइ लीज़ा कइ द् आवेला, मोल स्कफेदी कइ वोइ थोला।	घरे ऊ लीज़ा जब आवेले, मद मेज जहाँ तहँ राखेले।
खाना देवला, तइ दोइ पेना, खाना देवला तइ दोइ पेना!	खावै दैवा, औ पीयैला, खावै०।
सो तो .जुर्का कइ करेला? ला लीज़ा वो मतारेला	सो ऊ जुर्का काइ करैला? ऊ लीजा के मतावैला।
लाके प्राशा वो फगेला, लाके प्राशा वो फगेला।	ओकर पसुली ऊ भाँगैला, ओकर०।
सो दोइ लीज़ा सम् केरेला! पाला फुन्दना कइ जाला,	का तब लीज़ा स्वयं करैले? पाछे तंबू के तहँ जाले,
थान वोइ पेइके कइ दोइ थोला, थान वोइ पेइके कइ दोइ थोला।	ठाँव वोहि बिछौना करैले, ठाँव०।
ला की इ साकरा कइ द् आवेला। मुइ पो .जुर्का कइ वोइ देला,	ओकर सासु जब आवैले। पुकार ज़ुर्का के ऊ देले।

(६) गायिका—मरुस्या, आयु १८ वर्ष, स्थान—कियेफ़, संग्रह-तिथि—१० सितंबर १९२८; पृष्ठ १८९—९०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ला की इ सकरा कइ द् आवेला, मुइ पो जुर्का कइ वोइ देला।
"आले जुर्का कइ चइ दा! सारे बुर्योरा खेरे,
नूमइ लीज़ो के दोम् नाइ, नूमइ लीज़ो के दोम् नाइ!"
ला को साक्तो मुइ कइ देला, 'कइ सॅम् लीज़ा, कइ सॅम वोयों?"
लीज़ा ॲंगलाल् नास्ति देला, लीज़ा ॲंगलाल्०।
सो लाकी साक्ता केरेला? पला त्सेरा कइ योइ जाला।
को ते ला योइ द् अर्खेला, को ते०।
सो दोइ लीज़ा सॅम् फेनेला! "दा शुनेस् तू शेइ तू दाली,
का-दॅख्तोरो मन् त् अंगेरेस्, अकना श् मे उमेराव!"
ला दॅख्तोरो कइ दीखेला, लेन् उदातर योव् कुशेला,
"फुगो ला तुमे ते-लेन्, फुगो०!
खेरे ला तुम् त् अंगारेन्, अकना श् वोइ के मेरेल्!
खेरे ला तुम् त् अंगारेन्, अकना०।
सो दो जुर्का कइ करेला? ला लीज़ा वो कइ दोम् लेला
ची का खेर् वोइ च'अरसेला, दा तइ लीज़ा कइ मरेला!

ओकर०।
"आरे जुर्का कहँ छौंडी? सारी बहुरिया घरे,
केवल लीज़ा ही घर नाहिं, केवल०।'
ओकर ससुरा पुकार तब देला, "कहँवा लीज़ा कहाँ बहुरिया!"
लीज़ा जवाब ना देले, लं ज़ा०।
का ओकर साझुरी करैले? पीछे तंबू के तब ऊ जाले।
जहाँ ओके ऊ पावेले, जहाँ०।
का तब लीज़ा स्वयं भनैले! "हाँ सुनसि तू सास तू दाई,
पासे डाक्टर मोहिं चहुँपाव, अबहीं मैं मरबों।"
ओके डाक्टर जब देखैला, लेइ गारी ऊ देवैला,
"अबै एहि तुम ले जाव, अबै०।
घरे एहि तुम ले जाव, एहि छुन इ मरैले!
घरे एहि०।
सो का जुर्का तब करैला? ओहि लीज़हि घर ले जाला।
का घरे ऊ पहुँचेलो, हाँ तहँ लीज़ा तब मरैले।

(७)

लापे माशो तइ जालो, दुखेस्ते द् अर्सालो।
बरो त्सेरा द् अन् ज़र्दा, ले कोवेर्चा रुपूने।
ओ वेरान् सुम्नाकुनो, हइ यो त्सेरा फरुनी।
सुकरस् अन्द ओ वस् लेला, खुर विंजाको कइ शिनेला।
खुर्दी चूची कइ केरला, चेर्चा लित्सा मेर्ज़ालित्सा।
"दा सुनेस् तू शेइ दोइकित्सा, लेता ब्राजील वस्तेस्ते।

(७)

आपै माशो तहँ जाला, दुरवा तक पहुँचैला।
बड़ा तँबुआ लगावेला, ओकर खोल रूपवा कै,
ओकर खंभा सोनवा कै, सब ऊ तँबुआ रेशम कै।
हथउर हाथे में ऊ लेला, छोट चीज के छिन्दै (काटै) ला।
छोटा काज तब करेला, कुंडलवा और मनियवा।
"हाँ सुनसि तू छोरी दोइकित्सा, लेई घइला अपने हाथे,

---

(७) गायिका—मरुस्या, आयु १८ वर्ष, स्थान—कियेफ़, संग्रह-तिथि-१० सितंबर १६२८, पृष्ठ १६०-६१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अइ तिलाती दुखेस्ते । लेला ये दोइकित्सा जाला ।
क दुराव द् असैंला । ला थागरी कइ दीखेला ।
अन्दे केरुत्सा द् अस्तारेला ला दोइकित्सा द् असैंला ।
"दा शुनेस् तू शेइ दोइकित्सा, कामेस् तू सर कमाव मे ।"
शुन थागलें ये देव्लेस्ते, कान माशो दा शुनेला
सुकुरास 'मेन् शिनेला ।' वस् पे लाके घूनरे थोला
अन्दे केरुत्सा ला शुदेला । पाले माशो सॅम् फेनेला,
"मार्. ओं देवला, ला दित्सा, कइ गेली, ची मा यावेली !"
पाला ला माशो कइ जाला, व्राजी पो त्सेमूरो द् अरखेला ।
सो दो माशो सॅम् केरेला ? येफता थेमा कइ फिरेला,
कइ दोइकित्सा च् अरखेला, कान पाल्पले द् आवेला ।
ले त्सेरूले खलीले, ये रोव्ली यो त्सिक्नीली ।
मुइ पे फूर्रा कइ दोम् देला: "दा शुनेस् तू शेइ फूरियो,
ले ता प्रामा ले ले वस्तेस्ते, इइ तेलार्ता ले गवेस्ते !"
सो दो रूपा सॅम् केरेला ? शेरन् पइ लावित्रा ले ला ।
तेला शेरो लेख कइ थोला, अन्दे लिन्द्री कइ अग्नीला ।
पाले नोत्का सॅम फेनेला, "आले रूपा ! दाव्चा दा, सोस्तर तू त्रग्नीसर्दान !" "सर् मे ते न त्रेग्नीलो !"
ले रोम् पलाल् कइ द् आवेना, अइ मन् नोत्का मूदरेना !

ओ तू जा दुखाके ।" लेले औ दोइकित्सा जाले,
पासे दुराव के पहुँचैले, ओके ठाकुर तब देखैला ।
अन्दर गड़िया के साजैला, ओहि दोइकित्सा के धरैला ।
'हाँ सुनसि तू छोरी दोइकित्सा, कापहुँ* तू जस कामों में ।"
"सुन ठाकरला, दैवाकी (सौं), काने माशो जो सुनैला ।
फरसहिं हमनके छिन्देला । "केस ऊ चूनल के धरैला,
अंदर गड़िया ओहि राखैला । परे माशो स्वयं भनैला,
'मार हे दैवा, ओहि दोइकित्सहँ, कब गइलै औ ना हुइलै ।"
परे ओहि माशो तब जाला, घइला पाथर पर देखैला ।
सो का माशो स्वयं करैला ? सातो राजन में फिरैला,
कहुँ दोइकित्सा ना देखैला, जब लउटिके आवैला
ओकर जुतवा टुटाले, जो डंडा ओहू छोटा (भइ) ले
हाँकहँ बूढी के तब देला. "हाँ सुनसि तू मेरी बुढ़िया,
ले चँगेरी अपने हाथे, और जा ओही गाँवनके ।"
सो का रूपा स्वयं करैले ? बालिश् गाड़ी में से ले ले ।
तले शिरके ओही देले, अन्दर निदरी तब पहुँचैले ।
परे नोत्का स्वयं भनैला, "अरे रूपा, देवहुँ धीया ! कासे तू (भई) भयभीता !" 'कैसे मैं ना होऊँ भयभीता !'
ऊ डोम पाछे जब आवैलें, मोही नोत्का ! ऊ मारैलें ।

* कामना = प्रेम करना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अइ तुत नोत्का ! इइ दोलेना ।" यो दीवानो ची गतोला,
-देता ले दोम् कइ द् आवेना, ची देस् लाशो लेखे देना ।
पालो रूपा सॅम् फेनेला, "वेशेन् तेले दा, शावेला, स तुमारो मे के सीम् !"
सो दो रूपा सॅम केरेला ? येखा वलेस् कइ शिनेला,
दो पश् लेस् वा तिखेला, दो अन्दे लेव्का थोला।
'आवेन् शवाले कइ किर्चमा, सो कइ किर्चमा वरुनी ।
को ते ई मोलो दा शुद्री !' कदीची रोम् कइ दोम् पेना,
लेंगे कानू कइ ताचोना । सो दो रूपा सॅम केरेला ?
देस तलारा मिता देला, मोल् योजीया ते हमील् ।
ले रोमेन् ते मतारेल् । कदीची रोम् कइ दोम् पेना,
पल् स्कामीना कइ पेरेना । सो दो रूपा सॅम केरेला ?
मुइ पे नोत्का कइ दोम् देला, "दा शुनेस् तू शेइ नोत्का
खेरे तू ले दा ते जास्, ले ग्रस्तेन् तू तू अस्तोरस्,
अइ मन् काते तू अरसेस् ।" सो दो नोत्का सॅम केरेला ?
मुन्द्रो शूकर कहू ति देला (?) काना काल् ग्रस् कइ गेली,
लें ग्रस्तेन् ची प्रिजार्दा, द् येफ्ता वेर्शा कइ दो पश्,
द् येफ्ता वेर्शा कइ दो पश्, ग्रस्तेस्के येक् ची दीखेला ।
क रूपा वोइ कइ द् आवेला, "अलेश् रूपा, दाव् चा दा ।
मुन्द्रो शूकर् के ची देम्, कनाकाल् ग्रस् के गेलेम् ।
ले ग्रस्तेन् ची प्रिजर्देम् !" सो दो रूपा सॅम् केरेला ?
खेरे रूपा कइ रशेला, ले ग्रस्तेन् वो बस्तारेला,
क दित्सी वो कइ नशेला. अन्दा काली केर्शा पर्नी।

"औ तोहिं नोत्का ! छुंरलें" उनकर बात न पुराले ।
तबै डोम तहँ आवैलें, ना ओहि नमस्कार देलें ।
परे रूपा स्वयं भनैलें, "बैसहु तले हाँ छौंडरो, सब कुछ तुमर मों पै आहै ।"
सो का रूपा फेर करैले ? एक छौनाके छिन्दै (काटै) ले
आधा ओकर पकावैले, आधा अंदर घडा धरैले ।
"जावहु छौंडे ! जहँ मदघरवा, सो जे पाथर मदिरा घरवा,
जहँवा मदिरा शीतल ।" उहाँ इतना डोम उहाँ पियलैं ।
उनकर कानों तब ततौलें । सो का रूपा फेरु करैलें ?
दस रुपैया हाथे देलें, मद अंगूरी मिलावैले ।
ओहि डोमन के मतावैले । एतना डोम तब मातैलें
नीचे बेंचके पड़ैलें । सो का रूपा फेरु करैले ?
हाँक नोत्का के तब देले, "हाँ सुनसि तू रे नोत्का,
घरे तू तुरतै जा, ओहि घोड़वन् तू कस ।
औ मोका इहँ पड़बै ।" सो का नोत्का फेरु करैला
....तब देला, पास घोड़वन के गइल ।
ओहि घोड़वन के ना पहिचानै; सात बरिस जे बीतल
सात बरिस जे बीतल, घोड़ा एकना देखैला
पासे रूपा ऊ तब आवैला, "अरे रूपा ! ले आपन घीया ।
...... पासे घोड़वन के गइलों ।
ओहि घोड़वन ना पहिचानों ।" सो का रूपा फेरु करैला ?
घरे रूपा तब पहुँचैले, ओहि घोड़वन के सैले ।
पासे दित्सा (दोइकित्सा) के भागैले, भइलें काले केसा उजरा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालवा का प्रद्योत राजवंश

श्री सूर्यनारायण व्यास

[गतांक का शेष]

मौर्य राजवंश—शिशुनागवंश के पश्चात् मगध में मौर्यों का उदय हुआ और महानंद की राजलक्ष्मी के साथ ही मालव प्रांत तथा उज्जयन राजधानी भी मौर्यों के अधिकार में आई। यहाँ मौर्य राजाओं के इतिहास को विस्तारपूर्वक संमुख रखने की आवश्यकता नहीं है, उनकी केवल क्रमबद्ध सूची ही देनी यथेष्ट है। उनका शेष इतिहास अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध है।

	राज्य-काल	ई० पू०	वि० पू०
१—चंद्रगुप्त	२४ वर्ष	३२५-३०१	२६८-२४४
२—बिंदुसार	२५ वर्ष	३०१-२७६	२४४-२१९
३—अशोक	३६ वर्ष	२७६-२४०	२१९-१८३
४—दशरथ	८ वर्ष	२४०-२३२	१८३-१७५
५—संप्रति	९ वर्ष	२३२-२२३	१७५-१६६
६—शालिशूक	१३ वर्ष	२२३-२१०	१६६-१५३
७—देवधर्मन	७ वर्ष	२१०-२०३	१५३-१४६
८—शतधर्मा	८ वर्ष	२०३-१९५	१४६-१३८
९—बृहद्रथ, बृहदश्व या बृहस्पतिमित्र	७ वर्ष	१९५-१८८	१३८-१३१
	योग १३७ वर्ष		

पुराणों में भी मौर्यों का राज्य-काल इतना ही लिखा है। मौर्यों के शासन-काल में उज्जयिनी को प्रांतीय राजधानी रहने का गौरव प्राप्त रहा। मौर्यों के पश्चात् शुंगों ने मगधराज-लक्ष्मी को आत्मसात् किया और पुष्यमित्र उनमें प्रथम शासक था जो सेनानी के रूप में ही अधिक प्रख्यात है।

'हिमवंतथेरावली' के अनुसार महावीर संवत् २९४ (ई० पू० २३४ और वि० पू० १७८) में अथवा दूसरे शब्दों में मौर्यों के शासन-काल में ही उज्जयिनी मौर्यों के शासन से मुक्त होकर बलमित्र और भानुमित्र के अधिकार में चली गई थी। 'हिमवंत-थेरावली' में ये दोनों अशोक के आत्मज तिष्य के पुत्र एवं जैन कहे गए हैं। इसमें इनका शासन-काल ६० वर्ष दिया है। श्री मुनि कल्याणविजयजी ने 'तित्थोगात्री पइन्नयं' के आधार पर इन्हें कालकाचार्य जैन मुनि का भगिनी-पुत्र एवं भरुकच्छ का सामंत बताया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उज्जयिनी में उस समय गर्दभिल्लवंशी राजा दर्पण राज्य कर रहा था। इस कथन के अनुसार मौर्यों के पश्चात् गर्दभिल्लों का शासन उज्जयिनी में हुआ और उस समय गर्दभिल्ल के पिता यव का राज्य वहाँ था। यव स्वयं अनिल नामक गर्दभिल्ल का पुत्र था। बलमित्र और भानुमित्र तब तक भड़ौंच में मौर्यों के या गर्दभिल्लों के सामंत थे। इन्होंने ४८ वर्ष तक भड़ौंच में राज्य करने के पश्चात् उज्जयिनी पर आक्रमण कर अधिकार किया था। इसके पूर्व यहाँ यव के पश्चात् दर्पण गर्दभिल्ल भी १२ वर्ष तक राज्य कर चुका था, उसका तेरहवाँ वर्ष चल रहा था। यही मत 'कल्पभाष्य' तथा 'चूर्णि' के आधार पर श्री मुनि कल्याणविजयजी ने प्रतिपादित किया है।

किंतु पुराणों से कुछ और ही बात जान पड़ती है। उनके अनुसार शुंगों के साथ ही मगध साम्राज्य का भी अंत हो गया था तथा पाटलिपुत्र में काण्वायन एवं दक्षिण में आंध्रभृत्य स्वतंत्र रूप से राज्य करने लगे थे। उसी समय जब आंध्रप्रांत मगध के शासन को अपने कंधों से हटा रहा था, अवंति और उज्जयन में भी शुंगों के तत्कालीन सामंत अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करते जा रहे थे। 'मत्स्य-पुराण' तथा 'ब्रह्माण्ड-पुराण' के निम्नलिखित श्लोकों के अनुसार मालवा में नागों का उदय हो रहा था—

नृपान्वैदिशांश्चाथ भविष्यांस्तु निबोधत।
शेषस्य नागराजस्य पुत्रः सुरपुरञ्जयः।
भोगी भविष्यते राजा नृपो नागकुलोद्भवः।
सदाचन्द्रस्तु... ....।
भूतिनन्दिस्ततश्चापि वैदिशे तु भविष्यति।
तस्य भ्राता यवीयांस्तु नाम्ना नन्दियशः किल।
शुङ्गानां तु कुलस्यान्ते शिशुनन्दिर्भविष्यति।

'भागवत' में इन नाग राजाओं का शासन-काल १०६ वर्ष लिखा है। इसका अभिप्राय यह है कि जब मगध में शुंगों का उदय हो रहा था लगभग तभी विदिशा में नागराज शेष के वंश की स्थापना हो रही थी और उसके पश्चात् उसके पुत्र भोगी ने इस वंश की यश-कीर्ति को प्रसारित करने के लिये सुरपुर या इंद्रपुर की विजय की। स्वर्गीय श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल के कथनानुसार यह इंद्रपुर बुलंदशहर जिले का इंदौर नामक प्राचीन ग्राम है, जहाँ नागशासकों के सिक्के आदि प्राप्त हो चुके हैं और अब भी प्राप्त होते रहते हैं[1]। उसके पश्चात् सदाचंद्र या रामचंद्र (चंद्रांशु) नाग राजा हुआ। शेष नागराज का अस्तित्व उसके प्राप्त सिक्कों द्वारा निर्विवाद सिद्ध हो चुका है और रामचंद्र नाग के भी अनेक सिक्के प्राप्त हो चुके हैं, किंतु उसके उत्तराधिकारी धर्मवर्मा या धनवर्मा, भूतिनंदि और नंदियशः के सिक्के अभी तक उपलब्ध

१ देखिए हिस्ट्री आव् इंडिया १५० ई० से ३५० ई० तक, पृष्ठ ९, पादटिप्पणी ३।
— संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुए हैं। इसी प्रकार शिशुनंदि का अस्तित्व भी केवल पुराणों के आधार पर ही स्वीकार किया जाता है। शिशुनंदि के शासन-काल का शुंगों के अंत होने के समय से आरंभ होने का अभिप्राय यह है कि ईसा से ९० वर्ष पूर्व एवं विक्रम से ३४ वर्ष पूर्व शिशुनंदि विदिशा के सिंहासन पर बैठा था। नीचे की तालिका इसे स्पष्ट करेगी—

शुंग राजा	
१—पुष्यमित्र	३० वर्ष
२—अग्निमित्र	८ वर्ष
३—वसुज्येष्ठ	७ वर्ष
४—वसुमित्र	१० वर्ष
५—भद्रक	२ वर्ष
६—पुलिंदक	३ वर्ष
७—घोष	३ वर्ष
८—वज्रमित्र	७ वर्ष
९ भागवतीमित्र	३२ वर्ष
१०—देवभूमि	१० वर्ष
योग	११२ वर्ष

१८४ ई० पू० से ८० ई० पू० तक (१२८ वि० पू० से २४ वि० पू० तक)

१८६ या १८४ ई० पू० से ८० ई० पू० तक (१३० या १२८ वि० पू० से २४ वि० पू० तक)

नाग राजा	
१—शेष	२० वर्ष
२—भोगी	१० वर्ष
३—सदाचंद्र या रामचंद्र	३० वर्ष
४—धर्मवर्मन्	१० वर्ष
५—वंगर	९ वर्ष
६—भूतिनंदि	५ वर्ष
७—नंदियशः	५ वर्ष
८—शिशुनंदि	१५ वर्ष
योग	१०४ वर्ष

अब यदि यह स्वीकार किया जाय कि गर्दभिल्लों का शासन मालवा में नागों के पश्चात् आरंभ हुआ तो बलमित्र और भानुमित्र का १२ वर्ष का शासन उनके पश्चात् मानना पड़ेगा। जैन-गाथाओं के अनुसार पुष्यमित्र से वसुमित्र तक शुंगों का शासन ९० वर्ष का माना जाता है, जो स्पष्ट ही अशुद्ध है। पुराणों के अनुसार इसका ठीक समय ५५ वर्ष आता है, जैन ग्रंथों की दृष्टि से उसके पश्चात् गर्दभिल्लों के १०० वर्ष के शासन का आरंभ होता है, किंतु पुराणों में गर्दभिल्लों की संख्या ७ एवं उनका राज्य-काल ७२ वर्ष दिया है।

यहाँ यह विचार करना भी आवश्यक है कि गर्दभिल्ल कौन थे? स्वर्गीय श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल ने यह सिद्ध किया है कि उड़ीसा के जैन सम्राट् महामेघवाहन खारवेल के वंश में जो सात राजा हुए वे गर्दभिल्ल कहलाते थे, अर्थात् खारवेलवंशी राजा और गर्दभिल्लवंशी राजा एक ही हैं। उनका कथन है कि खरवेल खारवेल का संक्षिप्त रूप है; खर और गर्दभ पर्याय है और वेल से भिल्ल बन गया। गर्दभिल्ल शब्द की इस प्रकार की व्युत्पत्ति उन्होंने स्वीकार की है। उनके इस कथन के लिये थोड़ा आधार जैन ग्रंथों से भी प्राप्त होता है। 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' में पुष्यमित्र, अग्निमित्र आदि शुंग राजाओं के पश्चात् १०० वर्ष तक 'गंधव्वाणं' (गंधर्व राजाओं का?) राज्य बतलाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, किंतु 'हरिवंश पुराण' के लेखक ने, जिसने अपनी गणना भी इसी 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' के आधार पर लिखी है, इस 'गंधव्वाणं' के स्थान पर 'गर्दभानां' लिखा है और इसका पर्यायवाची शब्द 'रासभानां' अर्थात् रासभ या खरराजा भी लिख दिया है। इस प्रकार 'गर्दभ' शब्द के विषय में तो समाधान हो जाता है, किंतु 'भिल्ल' को 'वेल' से मिलाना तनिक कठिन प्रतीत होता है। 'वेल' संस्कृत में समुद्रतट अथवा समुद्रतटवर्ती देश को कहते हैं और इस प्रकार यह 'उद्र' या 'ओड्र' अर्थात् 'उड़ीसा' का भी पर्याय हो सकता है। खारवेल या चारवेल का अर्थ समुद्रतटवर्ती देश है। वहाँ के राजा और प्रजा को भी इस नाम से पुकारा जा सकता है। संभव है खारवेलवंशी राजाओं की वह प्रजा जो समुद्रतट से दूर स्थलप्रदेश में रहती थी और भील जातिमय थी (आजकल भी उड़ीसा के पश्चिमी भाग में भीलों का ही देश है) गर्दभिल्ल कही जाती रही हो, और इसी कारण वहाँ के भीलराज भी गर्दभिल्ल कहे जाते हों अथवा राजा भील जाति के न भी हों तो भी वहाँ खारवेलवंशी राजा खारभिल्ल, खरभिल्ल और गर्दभिल्ल कहे जाते रहे हों। कहने का अभिप्राय यह है कि गर्दभिल्लों का उद्गम कलिंग का इतिहासप्रसिद्ध चेट या चैत्र वंश था।

इन चैत्रवंशी कलिंग-सम्राटों का प्रवेश उज्जयिनी में कब और किस दशा में हुआ यह जानने के लिये इस वंश का भी कुछ प्राचीन इतिवृत्त जानना आवश्यक है। अजातशत्रु के प्रसंग में लिखा जा चुका है कि उसने लिच्छिवियों को परास्त कर उनके राजा चेटक या चैत्रक को युद्ध में मार डाला था एवं उसका पुत्र शोभन या शुभराज भागकर अपने श्वशुर कलिंगपति सुलोचन के पास चला गया था[1]। चैत्रक के संबंध में कहीं कहीं अनशन द्वारा प्राण त्यागने का भी उल्लेख पाया जाता है, किंतु शुभराज का कलिंग जाना निर्विवाद है। पुत्रहीन होने के कारण कलिंगराज सुलोचन ने इसी शुभराज को अपना उत्तराधिकारी बनाया और उसने अपने पिता के नाम पर कलिंग में चैत्र या चेटक-वंश की स्थापना की। यह घटना महावीर संवत् १८, ई० पू० ५०८, वि० पू० ४५२ की है।

शोभनराज के उत्तराधिकारियों की संक्षिप्त सूची हिमवंतकृत 'थेरावली' के अनुसार इस प्रकार है—

नाम	राज्यकाल	महावीर-संवत्	ईसा-पूर्व	विक्रम-पूर्व
१—चंडराज या चंद्रराज, शुभराज से तीसरी पीढ़ी में	अज्ञात	१७८	३५८	२९२
२—क्षेमराज या खेमराज, शुभराज से आठवाँ राजा	४७	२७०-३१७	२५६-२०९	२००-१५३

१—देखिए नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५२, अंक ३, पृष्ठ ६२।—संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम	राज्यकाल	महावीर-संवत्	ईसा-पूर्व	विक्रम-पूर्व
३—वृद्धराज, खेमराज का पुत्र	२४	३१७-३४१	२०९-१८५	१५३-१२९
४—धर्मराज, भिक्षुराज महामेघवाहन खारवेल वृद्धराज का पुत्र	३०	३४१-३७१	१८५-१५५	१२९-९९
५—वक्रराज, महामेघवाहन खारवेल का पुत्र	३२	३७१-४०४	१५४-१२२	९९-६७
६—विधुराज, वक्रराज का पुत्र	३३	४०४-४३७	१२३-९०	६७-३४

विधुराज या विदुहराय से आगे चेटवंशी कलिंग-नरेशों की सूचना प्राप्त नहीं होती। इन महाराजाओं में से धर्मराज, भिक्षुराज, महामेघवाहन खारवेल बड़ा प्रतापी हुआ। निर्ग्रंथ भिक्षुओं का परम भक्त यह जैन सम्राट् भिक्षुराज की उपाधि से विभूषित था। कलिंग देश हाथियों के लिये अति प्राचीन काल से सुप्रसिद्ध है। अतः वहाँ के सम्राट् महामेघवाहन भी कहे जाते रहे हैं। उन सम्राटों की राजधानी समुद्रतट पर थी। अतः वे खारवेलाधिपति की पदवी भी धारण करते थे। वृद्धराज का पुत्र धर्मराज बड़ा प्रतापी, विजयी और तेजस्वी था। इसलिये उसके नाम के साथ तीनों पदवियाँ लगी हैं। इसके शासन का विशेष वृत्तांत हाथीगुंफावाले प्रसिद्ध खारवेल के शिलालेख से ज्ञात हुआ है जो संक्षेप में इस प्रकार है—

इसने मगध देश के राजा बहस्पतिमित्त (बृहस्पतिमित्र-पुष्यमित्र) को पराजित कर मगध के मौर्यों की अशोक-काल से चली आती कलिंग की पराधीनता का अंत किया। मौर्यों से भी पूर्व नंदराज ऋषभदेव की एक स्वर्ण-प्रतिमा कलिंग विजय कर वहाँ से मगध को लाया था, महाराज खारवेल उसे भी फिर कलिंग राजधानी को वापस ले गया एवं कुमारगिरि पर श्रेणिक के बनवाए जिन मंदिर का पुनरुद्धार कर उसमें उसकी पुनः प्रतिष्ठा कराई। इसने यवनराज डिमिट्रियस की सेना को जो मथुरा और अयोध्या से बढ़कर पाटलिपुत्र तक पहुँच चुकी थी ऐसी करारी हार दी कि यवन-सरदार अपनी सेना का रसद आदि सामान तक छोड़कर भाग गया। दूसरी बार मगध पर फिर चढ़ाई कर मगध सम्राटों के प्रसिद्ध सुगांग प्रासाद में अपने हाथी बँधवाए एवं पुष्यमित्र को अपने चरणों की वंदना करने के लिये बाध्य किया। अपनी दिग्विजय यात्रा में इस विजयी सम्राट् ने रथिकों और भोजकों को क्रमशः खानदेश और विदर्भ में परास्त किया। दिग्विजय के पश्चात् खारवेल महाराज ने राजसूय यज्ञ किया और महामंडलेश्वर तथा कलिंग-चक्रवर्ती की पदवियाँ धारण कीं।

कलिंग-सम्राटों का इसी अवसर पर उज्जयिनी पर अधिकार हुआ होगा। किंतु जैन-ग्रंथकारों के लेखानुसार अशोक के पश्चात् ही मौर्य राज्य दो भागों में विभक्त हो गया था—पूर्व या मगध में प्रधान वंश राज्य करता रहा एवं पश्चिम या मालवा, गुजरात आदि प्रांतों में संप्रति चला गया था। संप्रति ने जैन-ग्रंथों के अनुसार ३७ वर्ष राज्य किया। उसके पश्चात् उज्जयिनी के सिंहासन पर अशोक के आत्मज तिष्यगुप्त के पुत्र बलमित्र और भानुमित्र अभिषिक्त हुए आदि। जैन-परंपरा के इतने अंश को तो निर्विवाद स्वीकार किया जा सकता है कि अशोक के पश्चात् मौर्य साम्राज्य निर्बल पड़ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके सभी उत्तराधिकारियों का राज्य-काल बहुत थोड़ा था, प्रत्येक का प्रायः ७ या ८ वर्ष समझना चाहिए, केवल शालिशूक का १३ वर्ष था। अतः उज्जयन में संप्रति के शासन से पूर्व ही संभवतः बलमित्र और भानुमित्र लगभग २३५ ई० पू० (१७९ वि० पू०) में अधिकृत हो गए होंगे।

हिमवंतकृत 'थेरावली' का यह कथन स्वीकार नहीं किया जा सकता कि बलमित्र तथा भानुमित्र अशोक के पौत्र थे। प्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री मुनि कल्याणविजयजी ने 'तित्थोगाली पइन्नयं' के आधार पर ही इस कथन को अस्वीकार किया है एवं इनको भरुकच्छ के सामंत तथा कालकाचार्य जैन मुनि का भानजा (भगिनीपुत्र) कहा है। कुछ भी हो, इन सामंत-भ्राताओं ने राष्ट्रिक नरेशों की ओर से उत्तर को बढ़कर मौर्य साम्राज्य की निर्बलता से लाभ उठाया एवं उज्जयिनी पर अपने स्वामियों के लिये अधिकार कर लिया। किंतु उनका यह अधिकार तब तक नहीं रह सका जब तक लड़खड़ाते हुए मौर्य सम्राज्य के उत्तराधिकारी वंश का उदय नहीं हो गया। पुष्यमित्र ने बृहद्रथ मौर्य को मारकर जब अपने वंश की प्रतिष्ठा की तभी उसने इन दोनों भाइयों के संबंध में भी अपना मत दृढ़ किया होगा एवं इनकी प्रतिद्वंद्विता में उसने अवंति के नागवंश को उठाया होगा। किंतु अपना अधिकार दृढ़तापूर्वक स्थापित कर सकने के पूर्व उसे खारवेल का सामना करना पड़ा जो पहले ही रथिकों को परास्त कर बलमित्र और भानुमित्र का बल तोड़ गया था। उसी समय उसने वहाँ अपने वंश का कोई युवक प्रतिनिधि भी रखा होगा जिससे भावी गर्दभिल्ल राजाओं के वंश का उदय हुआ। यह भी ज्ञात होता है कि महाराज खारवेल को या उसके प्रतिनिधि को रथिकों की पराजय के पश्चात् उज्जयिनी में वास्तविक विजय का लाभ न मिल सका होगा। उक्त सामंत और खारवेल के प्रतिनिधि परस्पर लड़ते भिड़ते ही रहे होंगे। इसी बीच शुंगों का उदय आरंभ हो गया और उन्होंने उनकी प्रतिद्वंद्विता में नागों को ला खड़ा कर दिया। शुंगों के पूर्ण बल प्राप्त करने एवं उनके साहाय्य से नागों के उज्जयिनी और अवंति पर पूर्ण अधिकार होने से पूर्व नभोवाहन या नहपान का अधिकार कुछ समय के लिये उज्जयिनी पर हो गया था। नभोवाहन का उज्जयिनी में शासन-काल १७५ ई० पू० से १३५ ई० पू० तक (११९ वि० पू० से ७९ वि० पू० तक) अर्थात् ४० वर्ष माना जाता है। ४० वर्ष का यह समय नागवंश के उदय और प्रवृद्ध होने के मध्य था, जब उनको शुंगों की निर्बलता के कारण उनसे कोई सहायता प्राप्त नहीं हो रही थी एवं उन्हें अपनी रक्षा के लिये मध्यभारत के जंगलों में भाग जाना पड़ा था।

पुराणों के अनुसार नहपान, नखपान या नखवान अथवा नरवाहन का समय तीसरे नागराजा रामचंद्र (चंद्रांशु) के पश्चात् अर्थात् नागवंश के अभ्युदय से ६० वर्ष पीछे आरंभ होता है। इससे पूर्व इस ६० वर्ष की अवधि में अवंति का नागवंश यथेष्ट बल प्राप्त कर चुका था, जैसा उनके पुराणवर्णित इतिहास से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञात होता है। दूसरे नागराज भोगी ने ही सुरपुर (वर्तमान बुलंदशहर जिले के इंदौर या इंद्रपुर) तक अपनी विजयपताका फहराई थी अर्थात् वे अंतर्वेद तक शुंगों के लिये विजय कर चुके थे। अपने राज्याभिषेक के दूसरे वर्ष में खारवेल ने कृष्णा नदी के तट पर स्थित मूषिक नगर नामक राजधानी में घुसकर सातकर्णी को परास्त किया था और चतुर्थ वर्ष में भोजकों और राष्ट्रिकों को (विदर्भ तथा उत्तर-सह्याद्रि के प्रांत को) विजय किया, जो उस समय अवश्य सातकर्णी के करद रहे होंगे। ये घटनाएँ क्रम से ई० पू० १८३ और १८१ (वि० पू० १२७ और १२५) की हैं। उस समय आंध्रवंशी तीसरे महाराज प्रथम सातकर्णी महान् राजसूययज्ञ-कर्ता का शासनकाल था। सातकर्णी इस पराजय के अपमान के पश्चात् अधिक समय तक राज्यासन पर आसीन न रह सके होंगे और उधर इस पराजय से खारवेल अपनी स्वतंत्र सत्ता तो पश्चिम भारत में अधिक काल के लिये स्थापित न कर सके होंगे, किंतु मालवा और उज्जयन में नागवंश को उन्नति करने का अवसर इसी समय से प्राप्त हो गया होगा। शुंग महाराज पुष्यमित्र द्वारा मौर्यराज्य का पुनरुद्धार होने पर वे नाग सामंत इधर अवंति और उज्जयिनी में कभी शुंगों के अधीन और कभी निर्बल शुंगों से स्वतंत्र होकर उस समय तक शासन करते रहे जब तक वे कुषाणों या शकों के भय से मध्यभारत में शरण लेने के लिये बाध्य नहीं हो गए। इसी अवांतर में दक्षिण पश्चिम भारत में उस खहरात वंश का उदय हो गया जो नहपान के कारण अधिक प्रसिद्ध है। इन घटनाओं को यहाँ इस प्रकार क्रमबद्ध किया जा सकता है—

नाम	राज्य-काल	ईसा-पूर्व	विक्रम-पूर्व
मौर्य-साम्राज्य के भंग होने पर बलमित्र भानुमित्र का उज्जयिनी पर अधिकार		२३५	१७९
कलिंगराज खारवेल महामेघवाहन का सिंहासनारोहण	३	१८५-१५५	१२९-९९
खारवेल का दक्षिण-पश्चिम भारत पर आक्रमण		१८३	१२७
खारवेल द्वारा भोजक और राष्ट्रिकों की पराजय		१८१	१२५
आंध्रनरेश सातकर्णी मल्लकर्णी का सिंहासनारोहण	१८	१९०-१७२	१३४-११६
आंध्रनरेश की खारवेल द्वारा पराजय		१८४-८१	१२८-१२५
खारवेल का मगध पर आक्रमण, बृहस्पतिमित्र और डिमिट्रियस की पराजय		१७७	१२१
पश्चिम भारत में खहरात वंश का आरंभ		१८०-१७५	१२४-११९
नभोवाहन का उदय	४०	१७२-१३२	११६-७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक वैदिक धर्म का प्रचार रहा होगा तब तक पुष्यमित्र के पूर्वज वेदाध्ययन करते रहे होंगे। तदुपरांत बौद्धधर्म का प्रचार हो जाने पर पुष्यमित्र के पूर्वजों पर भी इसका प्रभाव पड़ा ही होगा। उनके पौरोहित्य का महत्त्व भी धीरे धीरे कम हुआ होगा और उन्हें अपनी जीविका के निमित्त अन्य साधनों का आश्रय भी ग्रहण करना पड़ा होगा। जान पड़ता है इसी कारण शरीर से स्वस्थ एवं पुष्ट पुष्यमित्र ने सैनिक जीवन अपनाया। मौर्य साम्राज्य की बृहत् सेना में उसने शीघ्र ही अपनी कुशलता का परिचय दिया और कालांतर में सम्राट् बृहद्रथ के राज्य-काल में प्रधान सेनापति का पद अलंकृत किया। इतिहास में पुष्यमित्र सेनापति के ही रूप में हमारे संमुख आता है। अतः यह सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि पुष्यमित्र प्रारंभ से ही सैनिक शिक्षा प्राप्त कर रहा था और सैनिक प्रवृत्ति होने के ही कारण उसने युद्धसंबंधी प्रायः सभी कलाओं में विशेष योग्यता अवश्य प्राप्त की होगी। साधारण सैनिक से सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित हो जाना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पुष्यमित्र का विशेष सैनिक उत्कर्ष यूनानियों के भारत-आक्रमण के अवसर पर हुआ जिसमें उसने स्वयं विशाल सेना का नेतृत्व कर यूनानियों को परास्त किया। इसी विजय के फलस्वरूप वह अपनी सेना का श्रद्धा-भाजन बन गया और अवसर आने पर सम्राट् को हटाकर स्वयं शासनारूढ़ हुआ।

सैनिक शिक्षा के साथ ही पुष्यमित्र ने भारतीय संस्कृति और साहित्य का भी यथेष्ट अध्ययन किया था। क्योंकि 'मनुस्मृति' में, जिसकी रचना शुंग-काल में ही हुई, लिखा है कि सेना का सर्वोत्तम पद और राज्य का उच्चाधिकारी दोनों के लिये वेदों और शास्त्रों की शिक्षा अत्यंतावश्यक है—

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥[1]

इसके अतिरिक्त पुष्यमित्र की ब्राह्मणधर्म के उद्धार में संलग्नता एवं उसके प्रति सच्ची सहानुभूति देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने भारतीय धार्मिक साहित्य एवं कर्मकांड में विशिष्ट ज्ञान अर्जित किया होगा। एक तो वह ब्राह्मण तिस पर मौर्यवंश के राजपुरोहित का वंशज, अतः उसके लिये वेदों तथा शास्त्रों का अध्ययन तो एक प्रकार से अनिवार्य ही रहा होगा।

राज्यारोहण

पुष्यमित्र ने किन परिस्थितियों में शासनसूत्र अपने हाथों में लिया यह पहले बताया जा चुका है। मौर्य सम्राट् बृहद्रथ प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य से च्युत हो चुका था। अनेक युद्धों में परास्त होने के कारण इसकी सेना का भी नैतिक पतन हो चुका था। अतः उसे अब एक ऐसे नेता एवं सेनापति की आवश्यकता थी जो सेना में पुनः युद्धोत्साह भर सके। पुष्यमित्र में ये दोनों अपेक्षित गुण विद्यमान थे। अतः उसे ही नेतृत्व मिला। थोड़े

१—मनुस्मृति, अध्याय, १२, श्लोक १००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनों पूर्व ही सेना विजय प्राप्त कर लौटी थी। बृहद्रथ अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिये सैन्य-प्रदर्शन के समय स्वतः उपस्थित हुआ था। इस अयोग्य सम्राट् से छुटकारा पाने के लिये यह सर्वोत्तम अवसर था। पुष्यमित्र ने उचित समय विचार कर उसका अंत कर दिया।[1] पाटलिपुत्र का राजसिंहासन सूना हो गया। सेना के अन्य पदाधिकारियों के बारंबार अनुरोध करने पर ही पुष्यमित्र ने शासन ग्रहण करना स्वीकार किया। वह राजा तो बना, किंतु अपने को सम्राट् कहलाना उसे नहीं रुचा।

पुष्यमित्र और यूनानी आक्रमण

पुष्यमित्र के राज्यारोहण के किंचित् काल पश्चात् ही यूनानियों ने पश्चिमोत्तर प्रदेश पर आक्रमण कर पंजाब, मथुरा तथा साकेत पर अधिकार कर लिया और वे पाटलिपुत्र तक चढ़ आए। उत्तर भारत की राजनीति उद्वेलित थी ही, यूनानियों को इससे भरपूर सहायता मिली। पतंजलि के 'महाभाष्य' तथा कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र'[2] नामक नाटक में इस आक्रमण का सजीव चित्रण किया गया है। महाभाष्यकार लिखते हैं—

"अरुणत् यवनः साकेतम् अरुणत् यवनो मध्यमिकाम्।"[3]

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस यवन-आक्रमण का नेता कौन था। संस्कृत-साहित्य से हमें इसका कोई उत्तर नहीं मिलता। वह केवल 'यवन' शब्द कह मौन हो जाता है। इस संबंध में श्री के० एच० ध्रुव ने 'युगपुराण' की एक संशोधित प्रति के आधार पर यवन-नेता का नाम पढ़ने की चेष्टा की है।[4] कुछ प्रसिद्ध इतिहास-विशारदों का यह मत है कि यवन-आक्रमण का प्रमुख सेनापति 'दिमित' (डेमिट्रियस) था। इन लोगों की कल्पना का आधार हाथीगुंफा का उत्कीर्ण शिला-लेख है। किंतु अन्य प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ताओं ने इस कल्पना का घोर विरोध किया है। पटना संग्रहालय में जो हाथीगुंफा-लेख की प्रस्तर-प्रतिमा सुरक्षित है उसके आधार पर डा० श्री अनंत सदाशिव अल्तेकर ने भी डा० जायसवाल के मत का विरोध किया है। इनका कथन है कि किसी भी प्रकार हम उसे 'दिमित' नहीं कह सकते। इस प्रकार दिमित का आक्रमणकारी होना विवादग्रस्त और संदेहपूर्ण है।

इस विषय में विचार के लिये यूनानी साहित्य भी अवलोकनीय है। इसके अनुसार तीन सेनापतियों ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था—(१) डेमिट्रियस (२) अपोलो-

---

१—प्रज्ञादुर्बलं च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिताशेषसैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं बृहद्रथं पिपेष पुष्यमित्रः स्वामिनम्।—हर्षचरित, पृष्ठ १९९। श्रीजयचंद विद्यालंकारकृत भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जिल्द २ (सन् १९४२) पृष्ठ ७९७ से—संपादक।

२—देखिए अंक ५, श्लोक १४ के बाद।—संपादक।

३—अध्याय ३, पाठ २, आह्निक २, १११।—संपादक।

४—श्रीजयचंद विद्यालंकार तो उसे यवनों का आक्रमण ही नहीं स्वीकार करते। उनका कहना है कि उक्त आक्रमण यवनों द्वारा नहीं अपितु खारवल द्वारा हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम	राज्य-काल	ईसा-पूर्व	विक्रम-पूर्व
बलमित्र और भानुमित्र की मृत्यु के पश्चात् नभोवाहन का उज्जयन के सिंहासन पर आरोहण		१७५	११९
आंध्रनरेश पूर्णोत्सिंग	१८	१७२-१५४	११६-९८
आंध्रनरेश स्कंदस्तंभि	७	१५४-१४७	९८-९१
आंध्रनरेश गौतमीपुत्र	५६	१४७-९१	९१-३४
गौतमीपुत्र के शासन के पंद्रहवें वर्ष में गौतमीपुत्र द्वारा क्षहरातों का अंत, नभोवाहन का पतन		१३२	७६
गर्दभिल्लवंश का उदय		१३२	७६
गर्दभिल्लों का राज्य-काल	७२	१३२-६०	७६-४
गर्दभिल्लों की स्वतंत्र सत्ता	१३	७३-६०	१७-४
शकों का उज्जयिनी पर दूसरी बार अधिकार, गर्दभिल्लों का अंत		६०	४
शक-राज्यकाल	४	६०-५६	४-०
विक्रमादित्य द्वारा शकों का अंत, संवत् की स्थापना और गण-शासन की पुनः प्रवृत्ति		५६	प्रारंभ

५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनानी पुष्यमित्र

[श्री सच्चिदानंद त्रिपाठी एम० ए०]

पुष्यमित्र भारत के प्राचीन इतिहास में मौर्योत्तर शुंग साम्राज्य के संस्थापक के रूप में प्रसिद्ध है। उसका उदय ऐसे समय हुआ जब पुण्यभूमि आर्यावर्त के पश्चिमी क्षितिज पर विदेशी आक्रमणों की घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं। देश का केंद्रीय शासन शिथिल पड़ गया था। सैनिक शक्ति पूर्णरूपेण नष्ट हो गई थी। जनता में तत्कालीन मौर्य शासक बृहद्रथ के प्रति घोर अश्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। परराष्ट्र-संबंध के ऐसे संकट-काल में देश की आंतरिक दशा भी शोचनीय हो गई थी। मौर्य साम्राज्य विशृंखल हो गया था। सुदूर दक्षिण और पूर्व के प्रांत केंद्र से अलग होते जा रहे थे। निर्बल और अदूरदर्शी मौर्य सम्राट् में ऐसी क्षमता न रह गई थी कि वह इस विकट परिस्थिति का धैर्यपूर्वक वीरता से सामना करता। मौर्य साम्राज्य संकुचित होकर अब केवल राजधानी के समीपवर्ती प्रांतों तक ही परिमित रह गया था। ऐसी स्थिति में एक ऐसे सैनिक शासक की आवश्यकता थी जो विदेशी आक्रमणकारियों से देश की रक्षा कर सुदृढ़ राज्यव्यवस्था स्थापित करता और जनता को उसके जीवन एवं संपत्ति की सुरक्षा का विश्वास दिला सकता। जनता व्यग्र थी। संकट-काल में सदा नेतृत्व करनेवाले ब्राह्मण-समाज की ओर उनकी दृष्टि पुनः गई। ब्राह्मण पुष्यमित्र ने क्षत्रियत्व भी धारण कर समयोपयुक्त यह गुरुतम कार्य स्वयं अपने कंधों पर उठाया।

जन्म तथा पितृ-कुल

पुष्यमित्र का जन्म एक उच्च ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उसके जन्मस्थान का तो निश्चित पता नहीं किंतु उसके जनक का नाम पुष्यधर्मी था यह निश्चित है। संस्कृत के प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'दिव्यावदान' के अनुसार पुष्यधर्मी धर्मशील व्यक्ति थे और मौर्य सम्राट् के प्रमुख पुरोहित-पद को सुशोभित करते थे। जैन ग्रंथों के आधार पर श्री त्रिभुवन लाल शाह का मत है कि पुष्यमित्र ही कल्कि अवतार था। कल्कि अवतार की कथा से पुष्यमित्र का साम्य स्थापित कर श्री शाह ने यह प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है कि पुष्यमित्र ने अपने जीवन-काल में उन्हीं कार्यों को संपादित किया है जिनके लिये कल्कि अवतार होनेवाला था।

प्रारंभिक जीवन और शिक्षा

पुष्यमित्र का प्रारंभिक जीवन कैसा था और किस आदर्श से प्रेरित था यह अतीत के तमसावृत गर्त में विलीन है। इस संबंध की जो कुछ भी ऐतिहासिक सामग्री हमारे संमुख है वह केवल उसका राजनीतिक जीवन ही प्रत्यक्ष करती है।

पुष्यमित्र के परिवार तथा उसके साम्राज्य की स्थिरता से उसके प्रारंभिक जीवन और शिक्षा के विषय में कुछ आभास अवश्य मिलता है। 'वंश-ब्राह्मण' से हमें विदित है कि शुंग-परिवार अपनी बौद्धिक कुशलता के लिये प्रसिद्ध था। अतः आर्यावर्त में जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तूपों का निर्माण कराया। जब तक ये स्तूप वर्तमान रहेंगे उसकी कीर्तिध्वजा फहराती रहेगी। अतः आप भी उतने ही स्तूप बनवाकर अपनी कीर्ति स्थापित कीजिए।"

पुष्यमित्र ने उत्तर दिया कि महाराज अशोक तो बहुत बड़े राजा थे। कोई दूसरा मार्ग बतलाओ। मंत्रियों ने कहा—"नाम अमर करने के दो ही मार्ग हैं; या तो अशोक का अनुसरण कीजिए अथवा उसके विपरीत आचरण कीजिए। अतः पुष्यमित्र ने बौद्ध-धर्म नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर ली और नगर में यह आज्ञा प्रचारित कर दी कि जो मुझे एक बौद्ध भिक्षुक का सिर काट कर देगा मैं उसे सौ स्वर्ण मुद्राएँ प्रदान करूँगा।[1] इस प्रकार उसने अनेक भिक्षुकों का वध करा डाला।

यह कथन है बौद्ध ग्रंथ 'दिव्यावदान' का। अब देखना यह है कि इतिहास की कसौटी पर यह कितना खरा उतरता है। 'दिव्यावदान' अर्द्ध ऐतिहासिक ग्रंथ है। अतः इस पर पूर्णरूपेण विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त 'दिव्यावदान' के विरोध में यह कहा जा सकता है कि यदि पुष्यमित्र बौद्धों का संहारकर्ता होता तो विदिशा के संनिकट साँची और भारहुत के कलापूर्ण स्तूप क्यों बने रहते। वह अपनी धर्मांधता-वश उन्हें सर्वप्रथम धराशायी करा देता। इसके अतिरिक्त शुंग-वंशोत्पन्न एक युवराज धनभूति तथा अनेक राजकुमारियों और रानियों ने स्तूप के निर्माणार्थ दान भी दिए हैं जिनके उत्कीर्ण लेख आज भी तोरणों पर मिलते हैं। अतः इस प्रमाण के संमुख रहते हम पुष्यमित्र को बौद्धधर्म का संहारक नहीं कह सकते। हाँ बौद्ध भिक्षुकों को दंड देने में उसकी राजनीतिक दृष्टि अवश्य निहित थी। भिक्षुओं ने यूनानी आक्रमणकारियों का खुलकर साथ दिया। वे यह समझते थे कि यवन लड़ाकू होने के कारण क्षत्रिय हैं। अतः वे एक क्षत्रिय द्वारा प्रवर्तित बौद्धधर्म की पूरी सहायता करेंगे। किंतु बाद में उनकी आशा पर पानी फिर गया। इसलिये देश की सुरक्षा के लिये पुष्यमित्र ने अवश्य पश्चिमोत्तर प्रदेश में बौद्ध भिक्षुओं को राजनीतिक कारणों से मृत्युदंड दिया होगा। इससे पुष्यमित्र को बौद्धधर्म का संहारक नहीं कह सकते। एक शासक की दृष्टि से उसने उस अवसर पर जो कुछ भी किया वह उचित था और अवस्था ऐसी थी कि दंड साधारण होने से शासन-कार्य बिगड़ सकता था। अतः उसे कठोरतम दंड देना पड़ा।

उपसंहार

प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर यही कहा जा सकता है कि पुष्यमित्र पुरोहित के कुल में उत्पन्न होकर सेनापति बना, भूसुर होकर भूपति हुआ और आक्रमणकारी यवनों को निष्कासित कर मातृभूमि का रक्षक कहलाया। उसने देश में वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की और बिगड़ती हुई शासनसत्ता को फिर से व्यवस्थित किया। भारतीय इतिहास में उसने प्रायः वही कार्य कर दिखाया है जो कभी चंद्रगुप्त मौर्य ने किया था।

१—यो मे एको श्रमणशिरो दास्यति तस्मैऽहं दीनारशतं दास्यामि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चयनिका

निखिल भारतीय भाषा हिंदी

[कलकत्ता स्थित ६, हेस्टिंग्स स्ट्रीट से प्रकाशित 'दि इंडियन ला रिव्यू' के भाग १, अंक २-३ (१९४७) में विख्यात भाषाशास्त्री श्रीसुनीतिकुमार चाटुर्ज्या लिखित 'ए पान-इंडियन लैंग्वेज ऐंड स्क्रिप्ट फार लाइयर्स ऐंड लेमेन' नामक लेख छपा है। उक्त लेख के राष्ट्र तथा राजभाषा-संबंधी महत्त्वपूर्ण अंशों का अनुवाद हम दे रहे हैं। चाटुर्ज्या महोदय ने कुछ समय तक हिंदी और नागरी के साथ ही अँगरेजी-भाषा तथा रोमनी लिपि को भी ग्रहण करने का समर्थन इस लेख में किया है। वैधानिक तथा अन्य प्रकार की शब्दावली के निर्माण के विषय में भी विद्वान् लेखक ने अपने सुझाव दिए हैं। —संपादक]

संसार की वर्तमान अवस्था को देखते हुए ज्ञात होता है कि कुछ साम्राज्यों और संघों (लक्षणों से यह सुस्पष्ट है कि अब साम्राज्यों के तो दिन गिने ही हैं) के अतिरिक्त सभी द्वारा यह मान्य मत है कि 'भाषा ही राष्ट्रीयता है'। मध्ययुगीन यह विचार कि राष्ट्रीयता का निर्णय धर्म द्वारा होना चाहिए, आज भी कहीं कहीं प्रचलित है और हमारे लिये यह दुर्भाग्य की बात है कि यह विचार भारत और विशेषत: पाकिस्तान में प्रचलित है। परंतु जिसने अपने इतिहास को ठीक ढंग से पढ़ा है और जो धार्मिक आग्रह से शून्य है वह धर्म को प्रथम और भाषा को द्वितीय स्थान न देगा, यद्यपि प्रतिक्रियाशील शक्तियों और विभिन्न भाषाओं से संबद्ध धार्मिक व्यक्तियों का संघटन यह सिद्ध करता हुआ दिखाई पड़ सकता है कि एक ही राजनीतिक संघ के व्यक्तियों के संघटन को प्रभावित करने में भाषा की अपेक्षा धर्म अधिक शक्तिशाली होता है।

भाषा राष्ट्रीयता का अत्यंत महत्त्वपूर्ण आधार है इस मानदंड से निर्णय करने पर ज्ञात होता है कि भारत एक ही राष्ट्र नहीं, प्रत्युत राष्ट्रों का समूह है। परंतु इस संबंध में यही अंतिम बात नहीं है। विभिन्न भाषा-सीमाओं के भारतवासियों में भौगोलिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक एकता के आधार इतने समान हैं—समान ही नहीं, वस्तुत: एक हैं—कि भारतीय केवल संघ की अपेक्षा कहीं अधिक दृढ़ रूप से संघटित हैं। सत्य तो यह है कि प्राचीन काल में और आज भी हमलोग अनेक बहुभाषाभाषी राज्यों के उदाहरण उपस्थित करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि भारत सदैव बहुभाषाभाषी रहा है और इसकी यह स्थिति उस समय भी थी जिस समय एक शासन के अंतर्गत अल्पाधिक रूप से राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय एकता प्राप्त हो चुकी थी, जैसे मौर्य (ईसा की तीसरी शती पूर्व), गुप्त (ईसा की पाँचवीं शती), मुगल (ईसा की सत्रहवीं शती) और अँगरेजी (ईसा की उन्नीसवीं शती) शासन में बहुत प्राचीन काल से भाषागत भिन्नता होते हुए भी भारत और भारतीय एक ही हैं यह भावना हममें विद्यमान रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डोटस (३) मैनेंडर (मिलिंद)। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार अपोलोडोटस की धारणा है कि भारत-विजय डेमिट्रियस ने की थी, ट्रोगस अपोलोडोटस और मैनेंडर का नाम लेता है किंतु वास्तव में भारत पर आक्रमण करनेवाले दो ही प्रसिद्ध सेनापति थे—डेमिट्रियस और मैनेंडर जिन्होंने विभिन्न मार्गों से पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया था।

भारतवर्ष की विक्षुब्ध परिस्थितियाँ देखकर डेमिट्रियस उस पर चढ़ आया। उस समय राजनीतिक दृष्टि से तीन नगर—पाटलिपुत्र, तक्षशिला और उज्जयिनी—अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे। पहला नगर राष्ट्र की राजधानी था और दूसरे तथा तीसरे नगर सुप्रसिद्ध प्रांतों की राजधानी, जहाँ राजवंश के ही व्यक्ति शासक के पद पर नियुक्त किए जाते थे। डेमेट्रियस ने इन तीनों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की बात सोची। किंतु यह महान् कार्य उसके लिये अकेले संभव नहीं था। सौभाग्य से उसे दो महान् सैनिकों—अपोलोडोटस और मैनेंडर की सेवाएँ भी प्राप्त हो गईं जिनकी सहायता से उसने इन नगरों पर आक्रमण किया।

जब डेमिट्रियस ने भारत पर आक्रमण के लिये प्रस्थान किया तब बख्त्र देश के राज्य-प्रबंध के लिये उसने अपने पुत्र द्वितीय यूथाडेमस को वहीं छोड़ दिया और साथ में अपने द्वितीय पुत्र द्वितीय डेमिट्रियस और मैनेंडर को ले लिया। अपनी विशाल सेना की सहायता से उसने गांधार को जीता और सिंधु को पार कर तक्षशिला पर अधिकार कर लिया। मध्यप्रदेश पर आक्रमण करने के लिये उसने तक्षशिला को केंद्र बनाया। संभवतः पूर्व काल में महान् सिकंदर ने भी ऐसा ही किया था। गांधार पर अधिकार हो जाने के पश्चात् डेमिट्रियस को यह ज्ञात हुआ कि भारतवर्ष में ब्राह्मणधर्म से बौद्ध साधुओं का घोर वैमनस्य है और इससे अपना उल्लू सीधा किया जा सकता है। उसने स्वयं सिंध देश पर विजय प्राप्त की। किंतु इसी समय उसे एक दुःखद समाचार मिला। बख्त्र पर यूक्रेटाइडिस ने आक्रमण कर दिया था जिसका सामना वीरतापूर्वक उसका पुत्र नहीं कर पा रहा था। अतः स्वदेश-प्रेम के कारण भारत-विजय का भार उसने अपोलोडोटस और मैनेंडर पर छोड़ा और स्वयं बख्त्र की रक्षा करने चला गया। मैनेंडर ने व्यास पार कर मध्यप्रदेश पर चढ़ाई की और मथुरा तथा साकेत पर अधिकार स्थापित कर पाटलिपुत्र पर घेरा डाल दिया। उधर अपोलोडोटस ने दक्षिण-पश्चिम मार्ग से उज्जैन पर अधिकार कर पाटलिपुत्र की ओर अपनी सेना भेज दी। ऐसी स्थिति में राजधानी के लिये महान् संकट उपस्थित हो गया। इस विशाल सेना का सामना करना पुष्यमित्र के लिये टेढ़ी खीर था।

संयोग की ही तो बात है। ठीक इसी समय स्वदेश-रक्षा के निमित्त बख्त्र से मैनेंडर की बुलाहट आ गई और उसे पाटलिपुत्र का घेरा उठाकर स्वदेश लौट जाना पड़ा। इस स्थिति का चित्रण 'युगपुराण' में इस प्रकार किया गया है—

ततः साकेतमाक्रम्य पाञ्चालान् मथुरांस्तथा।
यवनाः दुष्टा विक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यप्रदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्ध-दुर्मदाः।
तेषामन्योन्यसम्भावा भविष्यन्ति न संशयः॥

पुष्यमित्र के लिये विदेशियों को भारत-भूमि से निष्कासित करने का यह अपूर्व अवसर था। उसने आक्रमणकारियों का पीछा किया और उन्हें सिंधु के उस पार खदेड़ दिया। इस विजय के उपलक्ष में पुष्यमित्र ने एक अश्वमेध यज्ञ भी किया जिसका वर्णन कालिदासविरचित 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक में किया गया है।

अश्वमेध यज्ञ का समारोह

भारतवर्ष में अश्वमेध यज्ञ की प्रथा का स्वतंत्र इतिहास है। प्राचीन काल में जब कोई राजा बहुत बड़ी विजय करता था तब उस विजय की प्रसन्नता में अपनी व्यापक शक्ति के प्रदर्शन के हेतु अश्वमेध यज्ञ करता था। यह यज्ञ पुष्यमित्र के पूर्व बौद्ध धर्म के उच्च और व्यापक प्रचार के कारण बहुत दिनों तक रुक गया था जिसे इस ब्राह्मण सेनानी ने अपनी विजय के उपलक्ष्य में पुनः प्रारंभ किया। इसलिये 'हरिवंश पुराण' में पुष्यमित्र के अश्वमेध की ओर संकेत कर वैशंपायन कहते हैं—

औद्भिज्जो भविता कश्चित् सेनानी काश्यपो द्विजः।
अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति॥[1]

इस यज्ञ में संमिलित होने के लिये पुष्यमित्र ने अपने पुत्र अग्निमित्र को भी सपरिवार विदिशा से बुलाया था जिसका वर्णन 'मालविकाग्निमित्र' में किया गया है।

पुष्यमित्र का राज्यारोहण ब्राह्मण-धर्म के पुनरुत्थान के फलस्वरूप हुआ था। अस्तु उसने बौद्धधर्म के विरुद्ध ब्राह्मण-धर्म को बढ़ावा देना अपना पूत कर्म बना लिया। यज्ञों का पुनरुद्धार करते हुए उसने एक दूसरा अश्वमेध यज्ञ भी किया जिसका प्रमाण अयोध्या में प्राप्त धनभूति द्वारा उत्कीर्ण एक प्रस्तरलेख से मिलता है—

द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य।[2]

इस अश्वमेध यज्ञ के आचार्य पतंजलि थे जिन्होंने 'महाभाष्य' में इसकी चर्चा भी की है—'पुष्यमित्रं याजयामहे'।[3]

क्या पुष्यमित्र बौद्धों का संहारक था

बौद्ध ग्रंथों ने एक स्वर से पुष्यमित्र को बौद्धधर्म का संहारक घोषित किया है। 'दिव्यावदान' में लिखा है कि एक बार पुष्यमित्र साकल (पंजाब) पहुँचा और उसने अपने मंत्रियों से पूछा कि मेरा नाम अमर कैसे हो सकता है। मंत्रियों ने उत्तर दिया —"महाराज पूर्व काल में अशोक नामक एक प्रतापी राजा था। उसने चौरासी हजार

१—महाभारत में भी देखिए २,४,४।—संपादक।
२—एपिग्राफिया इंडिका, भाग २०, पृष्ठ ५७।—संपादक।
३—अध्याय ३, पाठ २, आह्निक १२३।—संपादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वसुधैव कुटुंबकम्' को स्वीकार करते हुए भी केवल देशगत भारतीय धर्म की दृष्टि से चारों धामों, सात पवित्र नदियों और सात प्राचीन पुरियों के रहने के कारण तथा हिमालय से कुमारी अंतरीप तक और अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान से ब्रह्मदेश तक हिंदुओं के आदर का पात्र होने के कारण पवित्र भारत देश को एक और अखंड समझना हिंदुत्व की विचारणा-पद्धति का एक अंग रहा है। अत्यंत प्राचीन काल से भारत के विषय में लिखने और विवेचना करनेवाले विदेशियों ने इसे एक ही समझा। भारतीय एकता की यह भावना भाषागत भिन्नता द्वारा अभिव्यक्त सुस्पष्ट भिन्नता के संमुख ओझल हो जाती है।

भारत के लिये एक राष्ट्रभाषा का प्रश्न राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ से ही हमारे देशभक्तों तथा विचार-नेताओं को परेशान करता रहा है। एक भारतीय राष्ट्रीयता के प्रतीक-स्वरूप हम एक भारतीय भाषा चाहते हैं। इस प्रकार की भाषा भारत की महत्त्वपूर्ण आर्य-भाषाओं में से ही एक हो सकती है। संस्कृत भाषा के द्वारा द्रविड़ दक्षिण ने सामान्यतः उत्तर का राजनीतिक और सांस्कृतिक नेतृत्व स्वीकार कर लिया है और तमिल प्रदेश के कुछ कट्टर आदि-द्रविड़ों ने ही अभी हाल में इस अत्यंत प्राचीन तथ्य का विरोध किया है अन्यथा इसका विरोध कोई नहीं करता।

आधुनिक उत्तर भारतीय भाषा जो निखिल भारतीय भाषा होने का अत्यधिक अधिकार रखती है, हिंदी या हिंदुस्तानी (हिंदुस्थानी) ही है। हिंदी की प्रतिद्वंद्विनी केवल दो भाषाएँ संमुख रखी गई हैं—एक है बँगला और दूसरी है संस्कृत। हिंदी के इस अधिकार की स्वीकृति पहले ही सन् १८७५ में केशवचंद्र सेन जैसे कुछ प्रमुख बंगाली विचार-नेताओं ने दे दी थी। सेन महोदय ने सन् १८७५ में अपने 'सुलभ-समाचार' नामक बँगला पत्र में भारतीय एकता की स्थापना के लिये प्रोत्साहन देने में सुदृढ़ साधिका होने के कारण निखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग का समर्थन किया था। इसी प्रकार श्रीभूदेव मुखर्जी ने भी इसी समय के आसपास 'हिंदी-हिंदुस्थानी' का पक्ष-समर्थन किया था।

देश में आर्यों के आगमन के समय से ही सांस्कृतिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में घटित घटनाओं की लंबी श्रृंखला के परिणाम-स्वरूप हिंदी अथवा हिंदुस्थानी अत्यंत स्वाभाविक रूप से अंतर-प्रांतीय विचार-विनमय की साधिका है। क्योंकि हिंदी 'मध्य देश' (सामान्यतः वर्तमान पश्चिमी संयुक्तप्रांत तथा पूर्वी पंजाब) की भाषा है। अतः इसे प्रतिमित संस्कृत, पालि, (अंतिम) शौरसेनी प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश और इसके आरंभिक रूपों की विरासत मिली। ये यथाक्रम प्राचीन और मध्य युग में व्यापक रूप से प्रयुक्त निखिल भारतीय बोलचाल की भाषाएँ थीं।

'भारतीय संघ' के अधिकतर भागों के निवासी देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी के पक्ष का समर्थन करते हैं और विज्ञान, दर्शन, कला-कौशल तथा संस्कृतिगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दावली के निर्माण में संस्कृत की सहायता लेना चाहते हैं। किसी बंगाली, उड़िया, असमी, गुजराती, महाराष्ट्री, नेपाली, पंजाबी हिंदू वा सिख, तैलंग, कन्नड़, तमिली, मलयाली, मुंडा, मणिपुरी और नेवार के लिये हिंदी-हिंदुस्थानी में अधिकतर आकर्षण इसके देवनागरी में लिखी जाने तथा इसमें संस्कृत शब्दावली होने के कारण है। मेरी दृष्टि से तो अधिक से अधिक भारतीय नागरिकों को संतुष्ट करने के लिये नागरी लिपि में लिखी हिंदी का सरकार द्वारा राज-भाषा घोषित किया जाना समस्या का तर्कसंगत सुलझाव है।............प्रवृत्ति तथा सामान्य भावना और रूप तथा विषय सभी दृष्टियों से इस प्रकार की 'भारतीय राष्ट्र (राज) भाषा' सच्चे अर्थों में निखिल भारत की राष्ट्र-भाषा होगी, क्योंकि ऐसी स्थिति में यह प्रांतीय भाषाओं के साथ साथ चलेगी और प्रांतीय भाषाएँ भी एक दूसरी की सहायिका होंगी।

सिंहल, स्याम और मलय की भाषाओं में संस्कृत शब्द

[प्रसिद्ध भाषातत्त्वविद् डा० श्रीरघुवीर ने इधर भारत के पड़ोसी देशों की भाषा पर संस्कृत तथा देवनागरी के प्रभाव के विषय में कुछ पत्रक अँगरेजी में प्रकाशित कराए हैं। इनसे ज्ञात होता है कि भारत के पड़ोसी देशों में संस्कृत भाषा तथा देवनागरी लिपि का प्रचार-प्रसार कितना व्यापक था। इसी प्रचार-प्रसार का परिणाम है कि आज भी इन देशों की भाषाओं में संस्कृत भाषा के तत्त्व विद्यमान हैं। इन पत्रकों में से 'लैंग्वेज आव् सीलोन', 'दि स्यामीज लैंग्वेज' और 'संस्कृत एलिमेंट इन मलाया' के आवश्यक अंशों का अनुवाद हम दे रहे हैं। —संपादक]

सिंहली

'सीलोन' शब्द ही संस्कृत शब्द 'सिंहल' से व्युत्पन्न है। यह छोटा द्वीप भाषा और संस्कृति की दृष्टि से भारत का एक अंग है। इसके उत्तरी भाग में तमिल-भाषी प्रवासी निवास करते हैं और शेष भागों के निवासी सिंहली बोलते हैं। सिंहली भाषा का इतिहास बहुत प्राचीन है जो प्रसिद्ध सम्राट् अशोक के समय तक जाता है। सिंहल की सामान्य भाषा में ऐसे तत्त्व हैं जिनके कारण यह किसी भी उत्तर भारतीय द्वारा बोधगम्य हो सकती है। परंतु इसमें कुछ अपने तत्त्व भी विकसित हुए हैं जिनके कारण यह आरंभ में दुरूह जान पड़ती है। सिंहली की जानकारी के हेतु उत्तर भारतीय का सिंहल में तीन महीने तक रहना पर्याप्त होता है। सिंहली साहित्य की जानकारी के लिये भी तीन महीने से कुछ ही अधिक समय लगता है। इसका कारण यह है कि इसका शब्द-भांडार संस्कृत से संबद्ध अथवा पालि है। स्यामी बौद्धों की भाँति सिंहली बौद्धों की भी धार्मिक भाषा यद्यपि पालि है तथापि आज भी सिंहली विद्वान् इसे संस्कृत-शब्द-भांडार से शब्द लेकर समृद्ध करते हैं। यहाँ आयुर्वेद का अच्छा प्रचार है और इससे सिंहल को सहस्रों शब्द प्राप्त हुए हैं। यहाँ संस्कृत को प्रभूत प्रतिष्ठा है और बौद्ध विद्वान् बोली हुई संस्कृत को सरलतापूर्वक समझ लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे कुछ शब्द दिए जा रहे हैं। इससे ज्ञात होता है कि सिंहली भारतीयों के कितनी निकट है—गंगा (नदी), प्रवातम (झरना), मृग (पशु), वृकमा (भेड़िया), मध्यरात्रिय (आधी रात), मोहोत (मुहूर्त), पाठशालाव (स्कूल), भाया और स्त्री (पत्नी), शरीर-स्थिति (स्वास्थ्य), शल्यवैद्य (सर्जन), विलेपनय (मरहम), अग्नि-वायु (गैस), तूर्यभांड्य (पियानो), रसायनकारया (रासायनिक), शिष्यय तथा अध्यायी (विद्यार्थी), लिपिकरुवा (क्लर्क) आदि आदि।

इसी प्रकार के अन्य संस्कृत शब्द भी कुछ हेर फेर के साथ सिंहली भाषा में प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार की सिंहली सामान्य जनता की भाषा है। सिंहल-निवासी बिना हिचक और त्रुटि के संस्कृत शब्दों का प्रयोग इसी कारण करते हैं कि संस्कृत हमारी भाषा की ही भाँति प्रमाणामही है। सिंहल में प्रविष्ट होनेवाले को ज्ञात होता है कि सिंहली संस्कृत शब्दों का प्रयोग करने में गर्व का अनुभव करते हैं और ऐसे शब्दों द्वारा अपने विचार व्यक्त करते हैं।

स्यामी

स्याम प्राचीन भारत के सांस्कृतिक उपनिवेशों में से एक है। हमारे लिये 'उपनिवेश' शब्द साम्राज्यशाही से संबद्ध नहीं है। यह शब्द स्नेह-बंधन का सूचक है।

सन् १२८३ में प्रसिद्ध राजा रामकामहेंग ने वर्णमाला प्रदान कर लिखित स्यामी भाषा को जन्म दिया। इस वर्णमाला का मूल स्रोत भारत से गया है। यद्यपि इस वर्णमाला का लिखित रूप देवनागरी से बहुत भिन्न हो गया है तथापि इसकी ध्वनि-प्रणाली अत्यधिक अंशों में देवनागरी की ध्वनिप्रणाली के समान ही है। स्यामी के व्यंजन और स्वर ये हैं—क, ख (दो रूप), ग (दो रूप), घ, ङ, च, छ, ज (दो रूप), झ, ञ, ट (दो रूप), ठ, ड, ढ, ण, त (दो रूप), थ, द, ध, न, प (दो रूप), फ (दो रूप), ब, भ, म, य, र, ऋ, ॠ, ल, ऌ, ॡ, व, श, ष, स, ह, ळ, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, ऐ, औ, ह (उदात्त रूप—ए स्ट्रांग फार्म)।

स्यामी लोगों ने भारतीय सभ्यता से पूरा लाभ उठाया है जो उनके जीवन और साहित्य में अभिव्यक्त है। उनके साहित्य और उनकी कला की प्रत्येक रचना में भारत के प्रति उनका प्रेम स्थित है।

स्याम में उच्च से उच्च पदाधिकारी आधुनिक भाषा-संबंधी कार्यों में लगे हैं। उनका ध्यान आधुनिक स्यामी भाषा के कोश-संबंधी कार्य पर विशेष है।

स्यामी भाषा में हमारे बहुत से शब्द हैं। जैसे—

कतिपय, कथा, कथाशेष (मृत व्यक्ति), कदाचार (कदाचारी), कदाहार (हानिकर भोजन), कन्यका-पति (दामाद), कर्णधार (नाविक), कर्मकार-परिषद (संघ संचालकगण), ओष्ठ (होठ), ओष्ठज (होंठों द्वारा उच्चरित वर्ण), उपराज (वायसराय), उपचक्षु (चश्मा, दूरवीक्षण यंत्र) आदि आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलय की भाषा

संस्कृत सर्वश्रेष्ठ भारतीय भाषा है। आदिकाल से लेकर स्वतंत्र भारत के समय तक—जब भारत विकसित और विस्तृत होने के लिये संपूर्णतः स्वतंत्र था, जब यह बाधा और बंधन ही न था, जब इसके समकक्ष कोई देश नहीं रखा जा सकता था और जब यह अपने यहाँ आए लोगों को वरदान देता था—तब तक के इसके बाह्यांतर सभी पक्षों की स्थापना संस्कृत में है। संपूर्ण संस्कृत वाङ्मय में भारतीय सभ्यता के सभी पक्ष अभिव्यक्त हैं। संस्कृत के स्थान पर कोई भी भाषा नहीं रखी जा सकती। ईसा की अठारहवीं शती के अंत तक संस्कृत का विद्या और शिक्षा की भाषा के रूप में भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वसंमत प्राधान्य था। ईसा की कुछ शतियों पूर्व यह समुद्र-पार परिचित और अधीत थी। यह देश इसलाम द्वारा शासित है। ऐसी स्थिति में यह और भी महत्त्वपूर्ण बात है कि इस देश के निवासियों के सामान्य जीवन में संस्कृत अब भी आधार के रूप में स्थित है।

मलय की भाषा में प्रचलित संस्कृत के शब्दों में से कुछ के उदाहरण इस प्रकार हैं—

सुचि (शुचि), सिंग (सिंह), सेरोज (सरोज), सेरिगाल (शृगाल), सेरी (श्री), सेनतोस (संतोष), सेलोक (श्लोक), सौदर (सोदर) आदि आदि।

सेरीराम (श्रीराम), रंजुन (अर्जुन) जैसे 'रामायण' तथा 'महाभारत' के वीर पुरुषों के नाम मलय देश में प्रचलित हैं। अप्सराओं तथा विष्णु, शिव, हनूमान जैसे कई देवताओं के नाम भी वहाँ हैं। मंतेरी, राजा, महाराज जैसी संस्कृत पदवियाँ भी वहाँ हैं।

वहाँ कुछ संस्कृत शब्दों के अर्थों में वृद्धि वा विकार आ गया है। जैसे, पुतेरा (पुत्र—राजकुमार), पुतेरी (पुत्री—राजकुमारी, परी) आदि।

इस प्रकार के शब्दों को देखने से ज्ञात होता है कि मलय देश की जनता में भारतीय परंपरा कितनी तह तक प्रविष्ट है। मलय भाषा से ऐसे सैकड़ों शब्द उद्धृत किए जा सकते हैं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध

तुलसीदास कौन थे ?

गोस्वामी तुलसीदास का नाम संसार में तब तक अमर रहेगा जब तक हिंदी साहित्य का अस्तित्व रहेगा। परंतु खेद की बात है कि अब तक यह निश्चित नहीं हुआ कि तुलसीदास कौन थे और उनकी जन्मभूमि कौन है। इधर कई वर्षों से हमारे कुछ सनाढ्यबंधु इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण और उनकी जन्मभूमि कासगंज के पास सोरों-सूकरखेत सिद्ध करने के लिये बड़ा यत्न कर रहे हैं। उन्होंने बहुत सी ऐसी सामग्री भी प्रस्तुत कर दी है जिसके देखने से एक बार तो कोई उनके पक्ष से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। और तो क्या, 'मानस' के सोरठे में जो 'कृपासिंधु नररूपहरि' आया है उसे भी अपने यहाँ के नरहरि चौधरी के मंदिर से जोड़ दिया है। परंतु उनकी उपस्थित की सामग्री निर्दोष नहीं है और न उसके बाहर कहीं से उसका समर्थन ही होता है।

हम तुलसीदास को सरयूपारीण ब्राह्मण और उनकी जन्मभूमि राजापुर मानते आते हैं। परंतु डा० माताप्रसाद गुप्त के 'तुलसीदास' ग्रंथ में हमें जो कुछ पढ़ने को मिलता है उससे हम समझते हैं कि वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। मिश्रबंधुओं और पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित ने उनके कान्यकुब्ज होने के पक्ष में जो कुछ लिखा है वह तो उनका पक्ष पुष्ट नहीं करता। परंतु डा० गुप्त ने पृष्ठ १३१ में लिखा है 'सरयूपारीण पक्ष में निम्नलिखित जनश्रुति का भी उल्लेख किया जाता है—

'तुलसी पराशर गोत दुबे पतिऔजा के।'

सरयूपारीण और कान्यकुब्ज का भेद जितना माना जाता है उतना साधारण लोग नहीं समझते और बहुत से सरयूपारीण अपने को कान्यकुब्ज ही कहते हैं, यद्यपि जिरह करने पर पता लगता है कि वे सरयूपारीण हैं। यहाँ विचारणीय यह है कि पतिऔजा वा पंत्यौजा के दुबे कान्यकुब्जों में होते हैं या सरयूपारीणों में। हम जानते हैं कि पंत्यौजा के दुबे कान्यकुब्ज ही होते हैं सरयूपारीण नहीं। यदि सरयूपारीणों में कोई पंत्यौजा का दुबे निकल आए तो यह समझना होगा कि वह कान्यकुब्ज था, पीछे कान्यकुब्जों से संबंध छूट जाने पर सरयूपारीण से संबंध करके सरयूपारीण बन गया। कलकत्ते में विश्वबंधु के संपादकीय-विभाग में काम करनेवाले श्रीरघुनाथ पांडेय 'प्रदीप' ऐसे ही सरयूपारीण हैं।

इस प्रसंग में एक बात और बता देना आवश्यक है। वह यह है कि पंत्यौजा के दुबों का गोत्र पराशर नहीं कात्यायन होता है तथा वंशावलियों में इनकी मर्यादा ७ बिस्वा बताई जाती है। काशी में सरयूपारीण ब्राह्मणों का निवास है और उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे जानकार बहुत मिल सकेंगे जो इस विषय में कुछ कह सकें। पराशर गोत्र में दुबे होते हैं सही, पर पंत्यौजा के दुबे पराशरगोत्रीय नहीं हैं, कात्यायनगोत्रीय हैं। यदि सरयूपारीण ब्राह्मणों में पराशर-गोत्रीय पंत्यौजा के दुबे मिल जायँ तो इस जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास पराशरगोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण माने जा सकते हैं अन्यथा नहीं। गोत्र भी कई कारणों से बदलते हैं। कभी कभी किसी अनाथ बालक का अन्य गोत्र का मनुष्य पालन-पोषण करता है तो यह उसे अपना ही बताता है। इस प्रकार के अनेक प्रश्न इस संबंध में उपस्थित होते हैं। दुबे, शुक्ल आदि आस्पद तो इस कारण से बहुधा बदलते देखे गए हैं।

तुलसीदास के कान्यकुब्ज होने का एक प्रमाण 'मानस' में ही मिलता है। श्रीराम की बरात, अगवानी, जेवनार आदि का जो वर्णन 'मानस' में दिया हुआ है उससे जान पड़ता है कि तुलसीदास कान्यकुब्ज थे, क्योंकि जो प्रथा इन बातों में कान्यकुब्जों में प्रचलित है उसी का दिग्दर्शन 'रामायण' अथवा 'मानस' में मिलता है। इस दिशा में और विचार करने का प्रयोजन है। इसमें खींचतान की आवश्यकता नहीं है। यह समझना कि तुलसीदास यदि सनाढ्य सिद्ध होंगे तो सनाढ्यों का दर्जा इस समय जो है उससे ऊँचा हो जायगा, भूल है। यही बात सरयूपारीणों और कान्यकुब्जों के विषय में भी कही जा सकती है। हमारे पूर्वजों ने तो अनेक सोम और वाजपेय याग किए हैं, परंतु हमारी प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा हमारे ही कर्मों पर अवलंबित है।

आशा है अन्य सज्जन भी इस विषय में अपने विचार प्रकट करेंगे।

—अंबिकाप्रसाद वाजपेयी

काहली

['पत्रिका' के वर्ष ५१, अंक ४ (माघ, संवत् २००३) में श्रीबलदेवप्रसाद मिश्र का "पीठमर्द और छायानाटक" नामक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें आए 'काहली' शब्द के अर्थ के विषय में श्रीजगन्नाथप्रसाद शुक्ल (सुधानिधि कार्यालय, ३ संमेलन मार्ग, प्रयाग) ने एक पत्र भेजा है जिसका आवश्यक अंश नीचे प्रकाशित किया जा रहा है।—संपादक।]

"नागरीप्रचारिणी पत्रिका" के चतुर्थ अंक (माघ) में श्रीबलदेवप्रसाद मिश्र का "पीठमर्द और छायानाटक" नामक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें लेखक ने 'काहली' को नगाड़े के समान कोई वाद्य बताया है। किंतु इसमें थोड़ी भूल है। 'काहली' वाद्य तो अवश्य है, परंतु वह नगाड़े के समान नहीं, धतूरे के समान होती है। यह मुँह से बजाई जाती है। एक प्रकार से यह बिगुल का काम देती है। यह एक लंबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नलिका सी होती है जिसके अंतिम छोर का भाग कुछ गोल फैला हुआ सा होता है और मुख में लगानेवाला भाग गोल नलिका के आकार के अनुरूप होता है। यह प्रयाण की घोषणा के समय अथवा सचेत करने के लिये बजाई जाती है। श्रीवैष्णवाचार्यों की सवारी के समय अब भी इसका उपयोग होता है और यह इसी नाम से पुकारी भी जाती है।

—जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

[मैक्डानल ने अपने संस्कृत कोश में 'काहल' (पुं०) का अर्थ किया है 'लार्ज ड्रम' (बड़ा नगाड़ा) और 'काहला' (स्त्री०) का अर्थ किया है 'काइंड ऑव् विंड इंस्ट्रुमेंट' (एक प्रकार का वायु यंत्र)। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पुंलिंग 'काहला' तो 'नगाड़ा' था, किंतु 'आ'कार धारण कर उसका स्त्रीलिंग रूप वायु से बजनेवाला वाद्य' हो गया। मोनियर विलियम्स (संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी) के अनुसार नपुंसक 'काहलं' भी 'संगीत वाद्य' (ए काइंड ऑव् म्युजिकल-इंस्ट्रुमेंट) कहा जाता है। वामन सखाराम आप्टे (ए प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी) 'काहला' को भी 'ए लार्ज ड्रम' (बड़ा नगाड़ा) बताते हैं और वह भी सेना का। वे 'काहलः', 'काहला' और 'काहलं' तीनों को 'ए हार्न' (भोंपू) भी कहते हैं। 'शब्द-कल्पद्रुम', हिंदी शब्दसागर' आदि में इससे मिलते-जुलते ही अर्थ दिए हुए हैं। हेमचंद्र ने 'अभिधान चिंतामणि' (कांड २, श्लोक १०८) की टिप्पणी में एक उद्धरण दिया है—

काहला तु कुहाला स्यात् चण्डकोला हला च सा।
संवेशप्रतिबोधार्थे द्रगडद्रकटाबुभौ॥

जिससे ज्ञात होता है कि काहला' कोई प्रचंड कोलाहल करनेवाला वाद्य है। 'अमरकोश' की 'रामाश्रमी टीका' में 'वंशादिकं' (कांड १, वर्ग ७, श्लोक ४) की व्याख्या करते हुए टीकाकार ने 'आदिपदात्काहलादि' लिखा है जिसका तात्पर्य हुआ वेणु के समान ही मुख से फूँककर बजाया जानेवाला बाजा।

इस दृष्टि से श्रीजगन्नाथप्रसाद शुक्ल ने जो इसके व्यवहार की बात कही है और जो धतूरे के फूल के समान इसकी आकृति बताई है वह विचारणीय अवश्य है। शब्दकल्पद्रुम में 'काहलापुष्पः' की व्याख्या दी हुई है —'काहलाकृतिरिव पुष्पमस्याः' अर्थात् काहला की आकृति के समान जिसका फूल है अर्थात् 'धुस्तूरः (धतूरा)। धतूरे का फूल शहनाई के समान लंबा सा होता है अतः 'काहला' भी उसी प्रकार का कोई वाद्य होगा। कर्नाटक प्रांत में प्रचलित 'कहल्ल' नामक बाजा भी इसी प्रकार का होता है और इसका उपयोग ग्रामदेव के वार्षिक पूजन तथा अधिकारियों के आगमन की सूचना देने के समय होता है। —संपादक

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

बिब्लिओग्राफी आव् दि पब्लिश्ड राइटिंग्स आव् पी० के० गोडे एम० ए०, तृतीय संस्करण। लेखक तथा प्रकाशक —श्री परशुराम कृष्ण गोडे एम० ए०, संग्रहाध्यक्ष भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना ४ । मूल्य ३) ।

अनुसंधान के क्षेत्र में श्रीपरशुराम कृष्ण गोडे का नाम किसी से छिपा नहीं है । साहित्यिक जीवन के आरंभ से ही इनका झुकाव प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुशीलन की ओर रहा है और अब तक इनके कम से कम ३३६ खोजपूर्ण निबंध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं जिनकी सूची उक्त ग्रंथ के रूप में उपस्थित है । इनके अतिरिक्त प्रायः तीन सौ ग्रंथों की आलोचनाएँ और दर्जनों अप्रकाशित निबंध इनके ऐसे हैं जिनकी तालिका इस सूची में नहीं दी जा सकी है । जैसा कि इन्होंने ग्रंथ की भूमिका में बताया है यदि इनके समस्त निबंधों का संग्रह प्रकाशित किया जाय तो वह पाँच पाँच सौ पृष्ठों की पाँच जिल्दों में पूर्ण होगा । बहुत कम लोगों की दृष्टि में आनेवाले सामान्य से सामान्य विषयों जैसे—जलेबी का इतिहास, घोड़े के चने का इतिहास, राजा भोज और गंगा तेली की लोक-प्रसिद्ध कथा आदि से लेकर गंभीर से गंभीर शास्त्रीय विषयों जैसे—काव्य, अलंकार, वेद, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, वेदांत, व्याकरण, विज्ञान, इतिहास, योग, संगीत आदि सब पर इन्होंने गवेषणापूर्ण निबंध लिखे हैं जो प्राचीन भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास की अमूल्य निधि हैं । तीस वर्ष की छोटी अवधि में ही इस प्रकांड पंडित ने अनुसंधान के क्षेत्र में जो कार्य किया है वह एक ही व्यक्ति द्वारा एक शती में भी संभव नहीं प्रतीत होता । साहित्यानुशीलकों के लिये यह ग्रंथ आकर ग्रंथों की भाँति उपयोगी है । अच्छा होता, यदि गोडेजी की समस्त कृतियाँ हिंदी में भी प्रकाशित हो जातीं जो किसी भी साहित्य के लिये गौरव की वस्तु हैं । इनकी ये रचनाएँ स्पृहणीय हैं और इनके कार्य अनुकरणीय । गोडेजी की रचना-शक्ति को संपादन-कला का भी पूर्ण सहयोग प्राप्त है । ग्रंथों के लिये सूची की उपादेयता सर्वविदित है । सूची के लिये भी सूची कितनी आवश्यक होती है यह इस सूची से स्पष्ट है । प्रस्तुत ग्रंथ को विभिन्न सूचियों से इस प्रकार सुसंघटित किया गया है कि अभीप्सित विषय तक पहुँचने में किंचिन्मात्र भी असुविधा का अनुभव नहीं होता ।

—बटेकृष्ण

राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद—(प्रथम शतक)—लेखक तथा प्रकाशक—प्रो० श्रीकन्हैयालाल सहल एम० ए०, बिड़ला कालिज, पिलानी । मूल्य २।) ।

काव्य में प्रसंगोद्भावना का बहुत महत्त्व है । वीर पुरुषों से संबद्ध लोक-प्रचलित प्रवादों में इसका सौंदर्य बहुत निखरा हुआ देखा जाता है । उनमें इतिहास और काव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सामंजस्य किसी देश की संस्कृति के भव्य दर्शन कराता है। राजस्थान अपने वीरों की नैतिकता और शौर्य के लिये लोकविश्रुत है। प्रस्तुत ग्रंथ में उसी वीरभूमि के सांस्कृतिक रूप के साक्षात् दर्शन कराए गए हैं। यह काव्य और इतिहास दोनों के अनुसंधान में बहुत उपयोगी है। इसके लिये लेखक का श्रम प्रशंसनीय है।

संपादन की दृष्टि से ग्रंथ में बहुत बड़ा दोष यह आ गया है कि प्रवादों को न तो ऐतिहासिक काल-क्रम और व्यक्ति-क्रम से रखा गया है और न उनकी किसी प्रकार की सूची ही दी गई है, जिससे किसी विशिष्ट प्रवाद के खोजने में सुविधा हो। प्रवादों के साथ यदि उनके नायकों का ऐतिहासिक परिचय भी संक्षेप में दे दिया जाता तो ग्रंथ की उपादेयता और बढ़ जाती। आशा है अगला संस्करण व्यवस्थित रूप में सामने आएगा।

—बटेकृष्ण

उपनिषदों की कहानियाँ—लेखक—श्रीरामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री। प्रकाशक—साहित्य-भवन, प्रयाग।

वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों का स्थान बहुत ऊँचा है। वे ज्ञान के भांडार हैं और वह ज्ञान सार्वभौमिक है। भारत पर तो उसका प्रभाव पड़ा ही है, विदेश के अनेक दार्शनिकों ने भी उपनिषदों का गुणगान किया है। उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है कि जीवन में इनसे आध्यात्मिक शांति मिली है। इस पुस्तक के लेखक ने उपनिषदों की कहानियों को हिंदी का रूप दिया है। लेखक का यह कार्य अत्यंत प्रशंसनीय है। इस पुस्तक के द्वारा जन साधारण तक उपनिषदों का ज्ञान फैल सकेगा। स्त्रियों और बच्चों को इस पुस्तक के पढ़ने से विशेष लाभ होगा। यह पुस्तक प्रत्येक पाठशाला के पुस्तकालय में रहनी चाहिए।

—रामनारायण मिश्र

चलते चित्र—लेखक—श्रीशिवचंद्र शर्मा। प्रकाशक—पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय, पटना। मूल्य १॥)

श्रीशिवचंद्र शर्माजी की कहानियों में भावात्मकता का प्राधान्य रहता है। 'चलते चित्र' में मध्यवर्गीय जीवन के चित्र भी हैं और निम्नवर्गीय जीवन के भी। इन कहानियों में कलात्मकता की कमी है, परंतु जिस प्रकार की कला का उपयोग शर्माजी ने प्रस्तुत पुस्तक में किया है। उससे इनके भविष्य के प्रति निराशा नहीं, आशा ही होती है।

भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता, भावात्मक आदर्शवाद तथा सर्वत्र बिखरी सूक्तियाँ कहानीकार को श्रीचंडीप्रसाद 'हृदयेश' के कहानी-संप्रदाय का प्रमाणित करती हैं। आशा है भविष्य में शर्माजी जीवन तथा जगत् से शिष्ट यथार्थ वस्तु ग्रहण कर उत्तरोतर उन्नत कहानियाँ हिंदी-संसार को देंगे।

—भिक्खु

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेंदु-युगीन वाङ्मय का पुनः प्रकाशन

श्रीधनंजय भट्ट द्वारा प्रेषित 'स्वर्गीय श्रीबालकृष्ण भट्ट की ग्रंथावली और जीवनी' नामक सूचना गत अंक में हमने प्रकाशित की है। भारतेंदु-युग को व्यतीत हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ है, पर इतने ही थोड़े काल में उस युग का संपूर्ण वाङ्मय लुप्त-प्राय सा हो रहा है। उस युग के किसी भी साहित्यकार का संपूर्ण साहित्य हमारे संमुख नहीं है। यहाँ तक कि उस युग के नेता भारतेंदुजी का भी सारा वाङ्मय अभी पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हो पाया है। 'सभा' ने इनकी सभी कविताएँ प्रकाशित कर दी हैं और वह शेष रचनाएँ भी शीघ्र ही प्रकाशित करेगी। उक्त युग के अन्य प्रमुख साहित्यकारों—सर्वश्री बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि की रचनाएँ भी सुसंपादित रूप में पुनः प्रकाशित नहीं हो पाई हैं। भारतेंदु-युगीन वाङ्मय को पुनः प्रकाशित करने की ओर साहित्यिक व्यक्तियों, प्रकाशकों तथा संस्थाओं को ध्यान देना चाहिए। यदि शीघ्र ही इस ओर ध्यान न दिया जायगा तो आशंका इस बात की है कि उस युग की पूरी सामग्री लुप्त हो जाय; क्योंकि इतने थोड़े समय में जब उस युग की पूरी सामग्री नहीं मिल रही है तब अधिक समय व्यतीत होने पर तो इसका मिलना असंभव ही हो जायगा। यदि इस कार्य को करने के लिये व्यक्ति, प्रकाशक तथा संस्थाएँ कृतसंकल्प हों तो संभवतः सामग्री प्राप्त होने में विशेष कठिनाइयों का सामना न करना पड़े। अभी उस युग की जानकारी रखनेवाले कुछ ऐसे व्यक्ति हमारे बीच विद्यमान हैं जिनके द्वारा कार्य की संपन्नता में सहायता मिल सकती है।

भारतेंदु-युगीन वाङ्मय की उपयोगिता के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उस युग के गद्य तथा पद्य-साहित्य में तत्कालीन समाज तथा जीवन की जो अभिव्यक्ति हुई है उसकी उपयोगिता आज भी ज्यों की त्यों है। उस युग के साहित्य में अभिव्यक्त समाज तथा जीवन से देश आज भी प्रेरणा ग्रहण कर उन्नति के पथ का पथिक हो सकता है। सच तो यह है कि भारतेंदु-युग का साहित्य राष्ट्रीय साहित्य की सभी प्रवृत्तियों से संपन्न है प्रत्युत वह भी हमारे स्वातंत्र्य के युद्ध का प्रधान अंग रहा है। ऐसे साहित्य का सुसंपादित रूप में पुनः प्रकाशन तो जनता तथा सरकार का पवित्र कर्तव्य होना चाहिए। आशा है जनता और सरकार दोनों का ध्यान इस ओर शीघ्र जायगा। हम सुधी व्यक्तियों, प्रकाशकों तथा संस्थाओं का ध्यान इस पुनीत और आवश्यक कार्य की ओर आकृष्ट करते हैं। 'पत्रिका' ने तो आरंभ से चौबीस वर्षों तक का अपना पुराना वाङ्मय इसी उद्देश्य से पुनः प्रकाशित किया था। अनुसंधान के लिये परम आवश्यक है कि ऐसी सामग्री जिसे सामान्यतया प्रकाशक प्रकाशित नहीं किया करते साहित्य-संवर्धन के हितैषी उसे प्रकाशित करने में दत्तचित्त हों। भारतेंदु-युग का वाङ्मय तो अर्थ-दृष्टि से भी लाभप्रद ही सिद्ध होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोप में हिंदी भाषा

श्रीराहुल सांकृत्यायन का 'यूरोप के 'रोमनी' भारतीय' नामक लेख हम इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। इससे ज्ञात होता है कि हिंदी भाषा के तत्त्वों से मिलते जुलते तत्त्वों की आधायक भाषाएँ यूरोप में भी हैं। अभी कुछ ही दिनों पूर्व यह संवाद मिला था कि आयरलैंड की एक भाषा में भी हिंदी के कुछ तत्त्व मिलते हैं। संभव है यूरोप की अन्य भाषाओं के अध्ययन-अनुशीलन से हिंदी की समान-धर्मिणी कुछ अन्य भाषाएँ भी मिल जायँ। यूरोप और भारत की भाषाओं की यह समानता कोई नई बात नहीं है। भारत की संस्कृत तथा यूरोप की यवनानी तथा लातीनी में कुछ भिन्नता होते हुए भी एकता है, इसे भाषाविद् स्वीकार कर चुके हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत तथा प्राचीन यूरोप की भाषाओं में समान प्रवृत्तियाँ किसी न किसी रूप में विद्वान् स्वीकार करते हैं। कहना न होगा कि यूरोप और भारत की आधुनिक भाषाएँ अपने यहाँ की प्राचीन भाषाओं के मूल से ही विकसित हैं। ऐसी स्थिति में कुछ भिन्नताओं के साथ इनमें समान प्रवृत्तियों का होना स्वाभाविक है।

यदि मानव का एक ही परिवार अपने मूल स्थान से बिखर कर सारे संसार में फैला है तो उसमें अब भी किसी न किसी रूप की समानता का मिलना आश्चर्यजनक नहीं है। यह समानता उसकी भाषा में मिलनी भी सहज है। इसमें संदेह नहीं कि भौगोलिक प्रभावों तथा समाजगत अनेक प्रकार के परिवर्तनों के प्रभावों के कारण एक परिवार का मानव चारों ओर बिखर कर बहुत परिवर्तित हो गया है। इस प्रकार के परिवर्तन ने उसकी भाषा पर भी प्रभाव डाला है—यद्यपि उसकी (भाषा की) अंतश्चेतना समान है। अभिप्राय यह कि भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने मूल भाषा की ध्वनियों को अनेक रूपों में विकसित कर दिया है, भाषागत अन्य परिवर्तन भी इन्होंने किए हैं।

हमारा निवेदन है कि हमें अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी तथा उसकी विभिन्न बोलियों के अनुशीलन पर भाषाशास्त्र की दृष्टि से ध्यान देना चाहिए। ऐसी विदेशी भाषाओं का जिनमें हिंदी भाषा तथा उसकी किन्हीं बोलियों के तत्त्व मिलते हैं, अनुशीलन आवश्यक है। एकाध विदेशी भाषाशास्त्री इस ओर थोड़ा बहुत काम करते कभी कभी सुने जाते हैं। यायावरों की भाषा में भारतीय शब्दार्थों का मिलना स्पष्ट सूचित करता है कि भारतीयों का प्रयास और पर्यटन बहुत दिनों से चल रहा है। इनकी भाषा का विशेष अनुशीलन अपेक्षित है। जहाँ तक रोमनी भाषा का संबंध है यूरोपीय भाषाशास्त्रियों ने इसके विषय में प्रभूत वाङ्मय प्रस्तुत कर दिया है। यूरोप में जहाँ जहाँ रोमनी भाषा मिलती है वहाँ वहाँ से इसका संग्रह किया गया है। परंतु हिंदी को दृष्टि में रखकर इसकी तुलनात्मक मीमांसा अभी तक नहीं प्रस्तुत हो सकी है, जिसका होना आवश्यक है।

हम भारतीयों का—विशेष रूप से हिंदीवालों का—इस क्षेत्र में कार्य करना और कराना कर्त्तव्य है। इसका होना दो ही रूपों में संभव है। एक तो इस रूप में कि कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्था इस काम को करे। दूसरे इस रूप में कि प्रांतीय अथवा केंद्रीय सरकार द्वारा यह काम संपन्न किया जाय। प्रस्तुत कार्य की संपन्नता में इतना अधिक द्रव्य अपेक्षित है कि किसी न किसी रूप में सरकारी सहायता की प्राप्ति अपेक्षित होगी। आशा है ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य की ओर सरकार का ध्यान अवश्य जायगा।

बापू का निधन

बापू भारत के सांस्कृतिक नेता थे। भारतीय आदर्श की साक्षात् मूर्ति थे। लोक-सेवा ही उनका एकमात्र कार्य था। काँटा बोनेवाले के मार्ग पर फूल बिछाकर वे उसे उचित मार्ग पर लाने के पक्षपाती थे। भारत की स्वतंत्रता का इतिहास इसकी सफलता का साक्षी है। भारतीय संस्कृति एवं आदर्श के उत्थान के लिये महात्मा गांधी ने वही किया जो बड़े बड़े अवतारों ने किया है। पुराणों में अवतारों के चरित्र बहुत पढ़े थे। कभी कभी उनकी वास्तविकता के विषय में संदेह भी होता था। किंतु जब कभी महात्मा गांधी की ओर ध्यान जाता है, मुख से सदैव यही निकलता है कि महर्षियों ने जो कुछ लिखा है सब सत्य है। उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। वस्तुतः वे वैसे ही थे। हमारा सौभाग्य था कि ऐसे महापुरुष की 'इहलोक-लीला' देखने का हमें अवसर मिला। साथ ही हमारा दुर्भाग्य है महद्दुर्भाग्य कि ऐसे यशस्वी पुरुष का परलोकगमन हमारे ही सामने हुआ।

गांधीजी की अमिट छाप हमारे जीवन पर, हमारे साहित्य पर, हमारे समाज पर, हमारे देश पर बहुत गहरी पड़ी है। जब तक मानवी आदर्शों का कुछ भी अस्तित्व इस भूमंडल पर रहेगा, गांधीजी का नाम अमर रहेगा। उन्होंने जन्म लिया था 'परित्राणाय साधूनाम्' पर आमरण उन्होंने असाधु का भी अत्राण नहीं होने दिया।

हम पुण्यश्लोक महात्मा गांधी की पुनीत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं जो राष्ट्रपिता थे, सत्य और अहिंसा के उपदेशक थे, शांति के दूत थे, विश्वप्रेम जिनका धर्म था और जो थे सांप्रतिक भारतीय स्वातंत्र्य-युद्ध के सर्वोच्च सेनानी।

दिवंगता श्रीसुभद्राकुमारी चौहान

यह कौन जानता था कि श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की जबलपुर की यात्रा उनकी महायात्रा होगी। उत्साह और उल्लास जैसे उनके जीवन में थे वैसे ही उनकी कविता में भी। उनकी 'झाँसी की रानी' नामक कविता की गूँज अब भी कानों में भरी है और सदैव भरी रहेगी। उनकी अंतस्तल-स्पर्शिनी कविता और कहानी हिंदी साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। वे स्वतः आदर्शवादिनी थीं और उनकी रचनाएँ भी उसी का उपदेश करती हैं। सुभद्राजी के उठ जाने से हिंदी-साहित्य की ही नहीं देश की भी विशेष क्षति हुई है। भारतीय स्वातंत्र्य-आंदोलन में अपना जीवन उत्सर्ग करनेवाली देशसेविकाओं में आप प्रमुख थीं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह इस विपत्ति को सहने की हमें शक्ति दे। उनकी आत्मा सद्गति प्राप्त करे। उनके परिवारवालों को सांत्वना मिले। हम उनके कुटुंबियों के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

पुस्तकालय
110736
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

[नवीन संस्करण]

वर्ष ५२ संवत् २००४

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

सहायक

शिवनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्षिक विषय-सूची

१—प्राचीन भारत में अश्वमेध—श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी एम० ए० ... १
२—लोक कथा संबंधी जैन-साहित्य—श्रीअगरचंद नाहटा ... ७
३—'बोधा' का वृत्त—श्रीविश्वनाथप्रसाद मिश्र १३
४—प्राचीन हिंदु गणित में श्रेढी व्यवहार—डा० श्रीव्रजमोहन ... २५
५—उर्दू की हकीकत क्या है—श्रीचंद्रबली पांडे ४६
६—कवींद्राचार्य सरस्वती—श्रीवटेकृष्ण बी० ए० (आनर्स) एम० ए० ... ७३
७—कुछ शब्दों का व्युत्पादन—श्रीबलदेवप्रसाद मिश्र ८२
८—मालवा का प्रद्योतराजवंश—श्रीसूर्यनारायण व्यास ८९,१५४
९—अपभ्रंश भाषा के कतिपय अन्य दिगंबर जैनग्रंथ—श्रीअगरचंद नाहटा १०५
१०—'आलम' की कृतियाँ—श्रीविश्वनाथप्रसाद मिश्र १०६
११—ऋष्यमूक-किष्किंधा की भौगोलिक अवस्थिति—राय कृष्णदास १२६
१२—यूरोप के 'रोमनी' भारतीय—श्रीराहुल सांकृत्यायन १४०
१३—सेनानी पुष्यमित्र—श्रीसच्चिदानंद त्रिपाठी एम० ए० ... ... १६२

विविध

१—बिलग्राम के हिंदी के कुछ मुसलमान कवि—श्रीशालग्राम श्रीवास्तव ३५
२—अक्षर अनन्य का 'निर्धार-शतक'—श्रीहरिमोहनलाल श्रीवास्तव ... ३७
३—संस्कृत में 'सुदामाचरित'—श्रीबलदेवप्रसाद मिश्र ... ४१
४—वीर वैरागी लश्करी—श्रीदेवसहाय त्रिवेद ४२
५—तुलसीदास कौन थे?—श्रीअंबिकाप्रसाद वाजपेयी ... १७३
६—काहली—श्रीजगन्नाथप्रसाद शुक्ल १७४

समीक्षा

१—माटी की मूरतें—श्रीसीताराम जायसवाल ८४
२—नवीन—श्रीभिक्खु ८५
३—अधिनायकतंत्र—श्रीभिक्खु ८६
४—मिट्टी की ओर—श्रीबच्चनसिंह ८६
५—वीर नाविक महाजनक—श्रीवटेकृष्ण ८७
६—अर्चना—श्रीभिक्खु ८८
७—एक पग—श्रीभिक्खु ८८
८—तुलसी—श्रीराम ८८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—अजित—श्रीशिवनाथ ११७
१०—नकुल—श्रीशिवनाथ ११६
११—कुरुक्षेत्र—श्रीशिवनाथ १२१
१२—अनोखी कहानियाँ—श्रीशिवनाथ १२४
१३—कवि और छवि—श्रीशिवनाथ १२५
१४—बिब्लिओग्राफी आव् दि पब्लिश्ड राइटिंग्स आव् पी० के० गोडे—श्रीवटेकृष्ण १७६
१५—राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद—वटेकृष्ण १७६
१६—उपनिषदों की कहानियाँ—श्रीरामनारायण मिश्र १७७
१७—चलते चित्र—श्रीभिक्खु १७७

चयनिका

१—निखिल भारतीय भाषा हिंदी ११८
२—सिंहल, स्याम और मलय की भाषाओं में संस्कृत शब्द ... १७०

सूचनिका

१—श्रीगणेशशंकर हृदयतीर्थ, चिरगाँव १४१
२—संयुक्तप्रांतीय राजभाषा हिंदी १२६
३—स्वर्गीय श्रीरामदास गौड़ की जीवनी १२६
४—स्वर्गीय श्रीबालकृष्ण भट्ट की ग्रंथावली और जीवनी ... १२६

संपादकीय

१—दिवंगत ओझाजी ४७
२—रेलवे-विभाग और हिंदी ४८
३—संयुक्तप्रांत की राजभाषा हिंदी १२७
४—स्वर्गीय श्रीकामताप्रसाद गुरु १२७
५—भारतेंदु-युगीन वाङ्मय का पुनः प्रकाशन १७८
६—यूरोप में हिंदी भाषा १७६
७—बापू का निधन १८०
८—दिवंगता श्रीसुभद्राकुमारी चौहान १८०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्ट नाटकावली

स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट

स्वर्गीय भट्टजी के तीन नाटक—(१) बृहन्नला, (२) वेणु-संहार तथा (३) जैसा काम वैसा परिणाम—प्रथम बार इसी संग्रह में प्रकाशित हुए हैं। बृहन्नला सर्वप्रथम संवत् १९८१-८२ के 'हिंदी-प्रदीप' में छपा था। वेणु-संहार इतना लोकप्रिय हुआ कि इसका पहला संस्करण छपते ही समाप्त हो गया था। तीसरा नाटक भी अपनी लोकप्रियता के कारण 'प्रदीप' में कई बार प्रकाशित हुआ था। पहले दो नाटक पौराणिक हैं, तीसरा सामाजिक। ये भारतेंदु-युगीन साहित्य की अमर कृतियाँ हैं जो लुप्तप्राय हो चली थीं। पृष्ठ-संख्या १२६; मूल्य १)।

भट्ट निबंधमाला

स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट

स्वर्गीय पंडित बालकृष्णजी भट्ट हिंदी के सर्वप्रथम निबंध-लेखकों में थे। भावात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक आदि सभी ढंग के निबंधों का प्रणयन उन्होंने किया है। प्रतिपाद्य विषय में उनकी पैठ बहुत गहरी, दृष्टि बड़ी पैनी और वर्णन-शैली अनूठी है। पुस्तक के दो भाग हैं जिनमें ६४ निबंध संगृहीत हैं। दोनों भागों की संमिलित पृष्ठ-संख्या लगभग ३००; तथा मूल्य २॥)।

खाद-विज्ञान

श्रीगुप्तनाथ सिंह

खेती के मुख्य आधार हैं भूमि, खाद और पानी। इनका परिज्ञान हुए बिना मनुष्य सफल किसान नहीं हो सकता। इस पुस्तक में खाद-विज्ञान की पूर्ण विवेचना की गई है। खाद कितने प्रकार की होती है, किस ढंग से और कितनी मात्रा में डाली जाती है, उसका उपयुक्त समय क्या है, किस फसल के लिये कौन सी खाद सर्वश्रेष्ठ है आदि खाद-संबंधी सभी विषयों का अत्यंत सरल एवं सीधी सादी भाषा में पूरा विवेचन इस ग्रंथ में किया गया है। पृष्ठ-संख्या लगभग १५०; मूल्य १।)।

हिंदी का सरल भाषा-विज्ञान

श्रीगोपाललाल खन्ना, एम० ए०

भाषाशास्त्र के इस ग्रंथ में भाषा-संबंधी सभी पहलुओं की विस्तृत विवेचना की गई है और साहित्यिक हिंदी की उपभाषाओं, भारतीय लिपियों का विकास तथा भाषा-संबंधी प्रागैतिहासिक खोज की पूर्ण मीमांसा है। भाषाशास्त्र के अध्ययन के लिये ग्रंथ बहुत उपयोगी है। पृष्ठ-संख्या लगभग ३००; मूल्य २।)।

मुद्रक—बजरंगबली 'विशारद', श्रीसीताराम प्रेस, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरानी हिंदी

स्वर्गीय श्रीचंद्रधर शर्मा गुलेरी

हिंदी परंपरानुसार किस प्रकार सार्वदेशिक भाषा का स्थान ग्रहण करती हुई आगे बढ़ी इसका बहुत विद्वत्तापूर्ण एवं स्पष्ट वर्णन इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने किया है। प्राचीन भारतीय भाषाओं के प्रवाहक्रम का विवेचन करते हुए संस्कृत से लेकर उत्तरवर्ती अपभ्रंश तक का शृंखलाबद्ध विवरण देने के अनंतर पुरानी हिंदी की पूरी छानबीन इस ग्रंथ में की गई है। इसमें हेमचंद्र, शार्ङ्गधर, मेरुतुंग, सोमप्रभाचार्य आदि के ग्रंथों में उद्धृत पुरानी हिंदी की कविताओं का विशद विवेचन तो है ही, साथ ही लेखक ने स्थान स्थान पर व्रजभाषा आदि प्रांतीय भाषाओं के प्रयोगों के शब्द-प्रतिशब्द रूपांतर भी बराबर दिए हैं जिनसे यह ग्रंथ हिंदी की सार्वदेशिक प्रवृत्ति और प्रकृति का अनुशीलन करने के लिये बड़े काम का हो गया है।

सर्वप्रथम यह प्रबंध 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' के नवीन संस्करण, भाग २ में प्रकाशित हुआ था और अपनी उपादेयता के कारण अद्यावधि प्राय: समस्त विश्वविद्यालयों में हिंदी की उच्च कक्षाओं में पाठ्य-ग्रंथ है। विद्यार्थियों और अध्येताओं की सुविधा के लिये अब यह पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया गया है। पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर; मू० २)

गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना

ब्योहार राजेंद्र सिंह

हिंदी-साहित्य में गोसाईं जी का क्या स्थान है यह बताने की आवश्यकता नहीं। अपने 'मानस' के आरंभ में ही उन्होंने 'नाना-पुराण-निगमागम-संमत' कहकर अपनी जिस समन्वय-वृत्ति का उल्लेख किया है वह उनकी समस्त रचनाओं में आदि से अंत तक व्याप्त है। इस समन्वय-परंपरा की पूरी छानबीन करके विद्वान् लेखक ने गोसाईं जी के विचारों की मीमांसा इस पुस्तक में की है। प्रसंगात् प्रारंभिक काल से लेकर मध्ययुग तक भारतीय संस्कृति, धर्म तथा साहित्य की धारावाहिक रूपरेखा भी लेखक महोदय ने अंकित कर दी है। गोस्वामीजी के भक्तों तथा उनकी रचनाओं के अध्येताओं के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। पहले भाग की पृष्ठ-संख्या २२५ के ऊपर; पक्की जिल्द, मूल्य ४)। दूसरा भाग भी छप रहा है।

भाषा-विज्ञान-सार

श्रीराममूर्ति मेहरोत्रा, एम० ए०

'हिंदी का सरल भाषा-विज्ञान' की भाँति इस ग्रंथ में भी भाषाशास्त्र का विवेचन है। भाषा-शास्त्र के आरंभिक ज्ञान के लिये यह पुस्तक परम उपादेय है। पृष्ठ-संख्या लगभग ३००; मूल्य २)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक)

वर्ष ५२—अंक ४ [नवीन संस्करण] सं० २००४

माघ-चैत्र

विषय-सूची

ऋष्यमूक-किष्किंधा की भौगोलिक अवस्थिति—राय कृष्णदास	१२९
यूरोप के 'रोमनी' भारतीय—श्रीराहुल सांकृत्यायन	१४०
मालवा का प्रद्योत राजवंश—श्रीसूर्यनारायण व्यास	१५४
सेनानी पुष्यमित्र—श्रीसच्चिदानंद त्रिपाठी एम० ए०	१६२
चयनिका	१६८
विविध	१७१
समीक्षा	१७६
संपादकीय	१७८

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

110730

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रिका के उद्देश्य

१—नागरी लिपि और हिंदी भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।

२—हिंदी-साहित्य के विविध अंगों का विवेचन।

३—भारतीय इतिहास और संस्कृति का अनुसंधान।

४—प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

सहायक

बटेकृष्ण

राजकीय कोश का प्रकाशन

काशी नागरीप्रचारिणी सभा जो राजकीय कोश प्रस्तुत कर रही है उसकी स्थानिक परिषद् (लोकल बोर्ड) संबंधी अँगरेजी शब्दों के हिंदी पर्यायों की सूची शीघ्र छपकर तैयार हो जायगी। सभा ने यह निश्चय किया है कि इसकी एक एक प्रति समस्त स्थानिक परिषदों को बिना मूल्य भेजी जाय। जो नगरपरिषद् (म्यूनिसिपल बोर्ड) तथा मंडलपरिषद् (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) इसे मँगाना चाहें सभा को लिखकर मँगा सकती हैं।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र
प्रधान मंत्री

मूल्य प्रति अंक २॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar